अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ का साप्ताहिक मुखपत्र

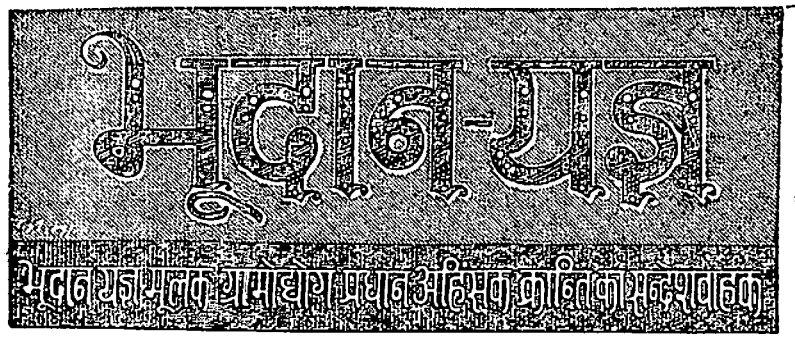

वार्षिक मूल्य ६) ▪ सम्पादक : धीरेन्द्र मजूमदार ▪ एक प्रति २ आना

वर्ष-३, अंक-२१ ▪ राजघाट, काशी ▪ शुक्रवार, २२ फरवरी, '५७

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः

—जिसके हृदय में अहिंसा घर कर जाती है, उसके समीप प्राणियों की सहज वैरवृत्ति अर्थात् शत्रुता नष्ट हो जाती है।

—महर्षि पतंजलि

—अपनी प्रेम की परिधि इतनी बढ़ानी चाहिए कि उसमें समस्त गाँव आ जाय। गाँव से जिला और जिला से प्रान्त, और इस प्रकार हमारे प्रेम का घेरा संसार तक फैल जाना चाहिए।

मैं उस परमात्मा के अतिरिक्त और किसी परमात्मा को नहीं जानता, जो लक्ष-लक्ष मूक प्राणियों के हृदय में मिलता है। मैं इन लाखों की सेवा करके उस परमात्मा की ही अर्चना करता हूँ!

—गांधीजी

राजनीति, लोकनीति और रचनात्मक कार्य

(विनोबा)

आज राजनैतिक शक्ति से भिन्न स्वतंत्र लोकशक्ति बनाने के काम में लोगों की रुचि कम दिखायी देती है। राजनीति पर बहुत ज्यादा विश्वास दीख रहा है। पर राजनीति में शक्ति तब रहती है, जब देश आज़ाद नहीं रहता है। स्वराज्य-प्राप्ति के पहले कुल शक्ति राजनीति में थी और गांधीजी की प्रेरणा से कुछ रचनात्मक काम चलो, उसका भी संबंध राजनीति से जुड़ा हुआ था। खादी चली, तो अंग्रेज सरकार के खिलाफ जनता को जगाने के खयाल से चली। शराब का पिकेटिंग चला, वह भी सरकार की आय पर प्रहार होता है और सरकार के खिलाफ एक नैतिक आवाज उठती है, इस आकर्षण से चला। इस तरह बहुत सारे रचनात्मक काम तो चलते थे, परन्तु उनका प्राण राजनीति था। रचनात्मक काम राजनीति के खयाल से करना ठीक नहीं था, परन्तु उन दिनों राजनीति को जो बहुत महत्त्व मिला था, वह उचित ही था। लोकमान्य तिलक हड्डी से (स्वभाव से) राजनीतिज्ञ नहीं थे। लेकिन चालीस साल तक वे सतत राजनीति में रहे। हम समझते हैं कि गांधीजी की भी वही हालत थी, वे भी हड्डी के (स्वभाव के) राजनीतिज्ञ नहीं थे। जब लोकमान्य से पूछा गया कि 'स्वराज्य प्राप्ति के बाद आप कौनसे मन्त्री बनना पसन्द करेंगे,' तो उन्होंने जवाब दिया कि 'स्वराज्य के बाद मुझे मंत्री बनने का प्रयोजन ही क्या है! तब मैं या तो वेदों का अध्ययन करूँगा या गणित का प्रोफेसर बनूँगा।' यह मिसाल मैंने इसलिए दी कि राजनीति के शिरोमणि माने जाने वाले तिलक और गांधीजी मूलतः केवल समाज-सेवक थे और लोकमान्य विद्या के उपासक थे। लेकिन उन्हें सब छोड़ कर राजनीति हाथ में लेनी पड़ी और वह ठीक भी था, क्योंकि जब तक देश को आज़ादी नहीं हासिल होती है, तब तक बाकी के कोई कार्य फलते-फूलते नहीं।

दूसरी बात यह है कि उन दिनों राजनीति में जो हिस्सा लेते थे, उन्हें जंगल में जाना पड़ता था, जेल जाना पड़ता था, मार खाना पड़ता था, उन पर सरकार की अवकृपा की दृष्टि रहती थी। उसमें उनको कुछ-न-कुछ त्याग करना पड़ता था। जिस क्षेत्र में त्याग करने का मौका मिलता है, उस क्षेत्र में ताकत होती है। शक्ति का अधिष्ठान त्याग है। आज राजनीति में त्याग नहीं रहा है। इसका अर्थ यह नहीं कि जो सरकार में जायें, वे भोगी बनें। वे काफी त्यागी बन सकते हैं और उन्हें त्यागी बनना भी चाहिए। परंतु आज राजनीति में त्याग की प्रेरणा नहीं है। भरत राज्य करता था, परंतु मूल में वह त्यागी था। वह उसका स्वतंत्र गुण था। रामचन्द्र जंगल में घूमते थे। वे भी त्यागी थे। परंतु वह जंगल का ही गुण था। राजनीति का यह गुण नहीं था कि मनुष्य त्यागी बने। कोई राजा स्वयं त्यागी बन सकता है, परंतु वह उसका स्वतंत्र गुण है। लेकिन जंगल का ही यह गुण है कि वहाँ जाने से त्याग करना पड़ता है। स्वराज्य के पहले की राजनीति में स्वाभाविक ही त्याग था, जैसे जंगल में स्वाभाविक ही तपस्या होती है। परंतु स्वराज्य-प्राप्ति के बाद राजनीति में स्वाभाविक तौर पर त्याग नहीं रहा।

यह सार-विश्लेषण इसलिए किया कि हम समझ लें कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद राजनीति में शक्ति नहीं है, क्योंकि वहाँ भोग होता है और सैकड़ों लोगों की स्पर्धा चलती है। आजकल चुनाव होते हैं। वे किसलिए होते हैं? लोग सरकार में जाकर क्या करेंगे? वे सेवा करेंगे, ऐसा बोला जाता है! एक सीट के लिए पचीस-पचीस अर्जियाँ आती हैं। क्या आप समझते हैं कि लोगों को सेवा की इतनी प्रेरणा हुई है कि एक सीट के लिए पचीस लोग आयें? अगर लोगों में इतनी सेवा की भावना हो कि सेवा की एक जगह लेने के लिए पचीस लोग आयें, तब तो हिन्दुस्तान स्वर्ग तक पहुँच जायगा! जाहिर है कि चाहे नाम सेवा का लिया जाय, तो भी वह स्थान सत्ता का है। इसलिए वहाँ पर इतनी भीड़ लगी हुई रहती है। फिर ऊपर वालों को कुछ काट-छाँट करनी पड़ती है और तिस पर भी गलत लोग वहाँ आते हैं। इन सबका मतलब यह है कि राजनीति में त्याग का मौका नहीं है। और जहाँ त्याग का मौका नहीं है, वहाँ शक्ति नहीं है। पॉवर (सत्ता) और स्ट्रेंग्थ (शक्ति) में फर्क करना चाहिए। शक्ति तो देवता है। शक्ति याने अंदर की 'स्ट्रेंग्थ'(बल), जो स्वराज्य-प्राप्ति के बाद राजनीति में नहीं रहती है। लेकिन अभी स्वराज्य-प्राप्ति के बाद लोगों को राजनीति का इतना ज्यादा आकर्षण है और अखबार में उसकी इतनी ज्यादा खबरें आती हैं कि हमें आश्चर्य होता है। उत्तम से उत्तम साहित्यिक को अखबार में उतना स्थान नहीं मिलता है, जितना कि किसी मामूली मंत्री के मामूली व्याख्यान को मिलता है। आज बंगाल में रवीन्द्रनाथ टैगोर होते, तो मैं नहीं मानता कि उनके विचारों को वहाँ के अखबारों में उतना स्थान मिलता, जितना कि वहाँ के किसी मंत्री को मिलता! चाहे बाद की पीढ़ियाँ उनका (टैगोर का) गुण-गान करें और तब उस मंत्री का नाम कोई भी न जाने! यहाँ पर कितने राजा हुए, लेकिन लोग उनको जानते भी नहीं। परंतु लोग माणिक्य-वाचकर, नम्बलवार, तिरुवल्लुवर, आदि तमिलनाड़ के सन्तों को जानते हैं।

धरा-गीत

धरती अपनी, घर अपना है, घर सबका सबकी धरती
धन धरती कुछ नहीं हमारी निर्मम मृत्यु हमें चरती।
हँसिया खुरपी हल-बैलों के साथ सदा हम रहते हैं
किंतु न हम कुछ सुनते, वे निशिदिन हमसे जो कहते हैं॥

बैल हमारे विपुल दान देते खुद थोड़ा-सा खाते
हल-हँसिया-खुरपी बेचारे स्वयं न खा सब दे जाते!
इनकी पशुता-जड़ता में भी भरी चेतना है भारी
तू क्यों मनुज न आगे बढ़ता तेरी कैसी लाचारी?

सर्वोदय में आत्मोदय है, आत्मोदय में सर्वोदय
जय अनीति की बड़ी पराजय, नैतिकता की हार विजय।
धरती सबकी, सब धरती के यदि हम दे दें धन-धरती
गाँवों की अभिशप्त बन्दिनी डूबी मानवता तरती॥

कानपुर —ब्रजलाल वर्मा

www.vinoba.in

राजनीति में काम करने वाले सारे लोग बाद में टिकते नहीं। उनका जो कुछ चलता है, उसी स्थान में और उसी काल में चलता है। परन्तु उस काल में भी कोई मूल्यांकन का मान तो होना चाहिए। हमारा कोई भी अखबार खोल कर देखो तो यही मिलता है कि हंगरी में झगड़ा चला और किसी मंत्री ने कोई काम किया। एक दफा एक मंत्री एक शहर में दाल की फैक्टरी खोलने गये थे। मानों कोई बहुत बड़ा काम था! पर अखबारों में उनके व्याख्यान की दो कॉलम रिपोर्ट थी! उन्होंने भी गांधीजी का नाम लेकर दाल की फैक्टरी खोली!

तो, लोग आज बिल्कुल ही भ्रांति में हैं। गरीबों को समझाया जाता है कि तुम्हारा भला सरकार से होगा, इसलिए अच्छे लोगों को सरकार में भेजो। और अच्छे लोग कौन हैं, यह हमने तय किया है। हमने आपके सामने जो सूची रखी है, उन लोगों को वोट दो, तो तुम्हारा भला होगा। आज इस तरह चल रहा है और आश्चर्य की बात यह है कि गांधी-विचार को मानने वाले रचनात्मक कार्यकर्ता भी मोह में पड़े हैं। मेरे लिए यह चिंता का विषय है कि आप सब लोग इतने उत्साह से राजनीति में क्यों पड़े हैं? जिस राजनीति का महत्त्व नहीं है, उसे हमारे लोग इतना महत्त्व देते हैं, तो जीवन की प्रतिष्ठा ही खोते हैं।

हमें रचनात्मक कार्य लोकनीति के आधार पर खड़ा करना चाहिए, याने वह 'इनोसंट' (निरुपद्रवी) कार्य के तौर पर नहीं चलना चाहिए।

आजकल खादी-काम चलता है, काफी चलता है। पर वह काम किसी को चुभता नहीं है! खादी तो वह है, जो चुभे! जो चुभेगी नहीं, वह खादी ही नहीं है। खादी तो हमारी बगावत का झंडा है। हमने अपने झंडे पर चरखा रखा था, क्योंकि उसके खिलाफ एक पूरी की पूरी 'पॉलिटिकल इकॉनॉमिक फिलॉसफी' (राजनैतिक और आर्थिक तत्त्वज्ञान) खड़े है। आज सरकार भी खादी को मदद दे रही है, लेकिन वह लाचार होकर देती है। बेकारी का असुर खड़ा है। उसके डर से वे काम कर रहे हैं, वह कोई स्वाभाविक भक्ति नहीं है। उसमें रावण का डर है, राम की भक्ति नहीं है। ऐसी खादी में जान नहीं है। वह चुभने वाली खादी नहीं है।

आज जो बिना चुभने वाले रचनात्मक काम चलते हैं, उन्हें ऐसा रूप दिया जाय कि वे चुभने वाले बनें। सामने वाले को लगे कि यह खद्दर-कार्य चलता है, तो हमारी कल्पना को उखाड़ रहा है। हमारा काम 'इनोसंट' (निरुपद्रवी) नहीं होना चाहिए। इसका मतलब यह नहीं कि हम कोई ऊधम मचाना शुरू कर दें! बल्कि उसका मतलब यह है कि हम जो काम करते हैं, उसे तत्त्वज्ञानपूर्वक करना चाहिए।

(बोड़ि, मदुरा में तमिलनाड़ के प्रमुख रचनात्मक कार्यकर्ताओं के बीच भाषण)

क्रांतियात्रा के पथिक

(वसंत बोंबटकर, वर्धा)

१९५७ में भूमिक्रांति के हेतु साल भर के लिए भगवान् की जेल स्वीकारने का आवाहन विनोबाजी ने किया। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। १९५७ का साल भूमिक्रांति में विश्वास रखने वालों को चुनौती दे रहा है। इस साल यह काम पूरा करने में हम कोई कसर बाकी न रखें, यह भावना हरएक लगनशील कार्यकर्ता में जाग उठी है। वह भावना घनीभूत होकर 'भगवान् की एक साल' की कैद की प्रेरणा में साकार हुई है।

नाग-विदर्भ के कार्यकर्ताओं में यह भावना तेजी से ज़ोर पकड़ रही है। '१ जनवरी, १९५७ को इस प्रदेश के जिले-जिले से १२५ कार्यकर्ता समारोहपूर्वक १ साल की जेल मान कर भूक्रांति के लिए कृतसंकल्प होकर घर के बाहर चल पड़े हैं। यह संख्या बढ़ते-बढ़ते हजार तक पहुँचेगी, ऐसा विश्वास हो गया है।

नागविदर्भ में अकोला जिला सबसे आगे बढ़ गया है। अब तक इस जिले में से ५५ कार्यकर्ताओं ने भगवान् की जेल स्वीकार कर ली है। उन्होंने जिस वीरता से इस कार्यक्रम को उठाया, उसकी कुछ झाँकियाँ उपस्थित कर रहा हूँ।

अकोला जिले के प्रमुख नौजवान कार्यकर्ता श्री. रा. ना. आढ़े ने घोषित किया कि "भूमाता की मुक्ति के लिए मैं घर छोड़ रहा हूँ। धरती सबकी माता है, उसका कोई मालिक नहीं हो सकता। अतएव आज से मैंने अपनी सारी जमीन की मालकियत सर्वस्व-दान करके छोड़ दी है। सन् '५७ में कोई मालिक न रहे, यह हमारा निश्चय है।" उनके साथ-साथ गाँव के अन्य चार भाइयों ने भी सर्वस्व-दान देकर जमीन पर की अपनी मालकियत छोड़ दी।

आधुनिक 'तानाजी'

उसी गाँव के श्री लक्ष्मणराव आढ़े ने अपना सर्वस्व-दान देकर मालकियत छोड़ दी। उनके इकलौते लड़के की शादी तय हुई थी। सगे-संबंधी घरवाले, सभी ने शादी निबटा कर जाने का उनको आग्रह किया। उस वीर पुरुष ने जवाब दिया: "सन् ५७ में भूमिक्रांति करनी है। शादी मुझे रोक नहीं सकती। मैं शादी में नहीं आऊँगा। '५७ साल में घर नहीं लौटूँगा। हमको शिवाजी का जमाना याद आता है। शिवाजी को "कोंडाणा" किला जीतना था! वह काम केवल उनका वीर दोस्त तानाजी ही कर सकता था, लेकिन तानाजी के बेटे का उसी समय विवाह था। अतः तानाजी से कैसे कहें? लेकिन तानाजी ने तत्क्षण कहा, "पहले शादी कोंडाणा की, फिर रायबा (लड़के) की!"

बीमार माँ को छोड़ चला!

श्री बक्काळ नामक एक तरुण कार्यकर्ता है। माँ सख्त बीमार थीं। १ जनवरी '५७ का सूरज निकला। उसने कहा, "अब घर में एक क्षण भी रुकना पाप है। धरती माँ मुझे पुकार रही है। मैं वह पुकार टाल नहीं सकता। मेरी माँ की चिंता गाँव वाले करेंगे। मुझे निकलना ही चाहिए।" और वे निकल पड़े।

और भी चिनगारियाँ!

एक भाई की शादी का मुहूर्त तय हुआ। कुछ दिन बाकी थे। उस भाई ने पिताजी से कहा, "भूमि-क्रांति पहले। मैं सन् '५७ में शादी नहीं करूँगा।"

राजपूती बाना!

एक नौजवान साथी ने भगवान् की साल भर की जेल मान ली। उसने अपने पत्नी से कहा, "यदि मोहवश मैं घर वापस आया; तो लाथ मार कर मुझे घर के बाहर निकाल दो।"

एक ट्रेंड शिक्षक ने कहा, "अब स्कूल में दिल नहीं लगता। कोई ज़बर्दस्ती करे, तो भी संभव नहीं है। मेरे दिल पर भूमिक्रांति का विचार छा गया है।" उन्होंने अपना इस्तीफा लिख दिया और साल भर के लिए निकल पड़े। जनपद-सदस्य श्री. गावंडेजी ने भी अपनी सदस्यता का इस्तीफ़ा भूक्रांति के लिए दिया।

बूढ़ों ने हमें लजाया!

साठ साल से ऊपर की उमरवाले दो बूढ़ों ने इस क्रांति के लिए घर छोड़ा है। वे ज्यादह चल नहीं सकते। लेकिन यात्रा में हमेशा सबसे आगे रहते हैं। लोग उनसे पूछते हैं, "आप कमजोर हैं। पढ़े-लिखे भी नहीं हैं। फिर क्यों दर-दर घूमते हो?" वे कहते हैं कि "अब तक स्वार्थ में जिंदगी काटी। अब परिवार में ही सड़ना हम पसंद नहीं करते। कुछ अच्छा काम करना चाहते हैं। हमसे ज्यादह काम भले नहीं न हो, लेकिन इस देश के नौजवानों को चेताने के लिए हम गाँव-गाँव घूमेंगे!"

उदात्त वीरता को जगाने वाले ऐसे कई करुण, गंभीर, पावन प्रसंग अन्य-कार्यकर्ताओं के भी लिखे जा सकते हैं।

इस तरह अकोला जिले में बच्चे, जवान, बूढ़े, पढ़े-लिखे, अन पढ़, अमीर-गरीब, सभी क्रांति में शामिल हो रहे हैं। जन-आंदोलन का दर्शन होने लगा है। इस क्रांति में शामिल होने वाले लोग कई बुरी आदतें लेकर आये, लेकिन जल्द ही वे चाय, बीड़ी, तमाकू छोड़ रहे हैं। नये संकल्प ले रहे हैं। उनकी जबान पर क्रांति का तांडव-नृत्य है। रग-रग में उत्साह भरा है। सामाजिक क्रांति के साथ-साथ आंतरिक शुद्धि की प्रक्रिया तेजी से काम कर रही है। ग्यारह दिन तक क्रांति के इन दीवानों के साथ हम लोग रहे। शायद ही कोई दिन ऐसा गया हो, जिस दिन कोई शुभ संकल्प प्रकट न हुआ हो। फिर वे कहते हैं—मैंने चाय छोड़ दी, बीड़ी छोड़ दी, खादी पहनूँगा, आदि आदि। विनोबा सच कहते हैं कि 'यह क्रांति दुनिया को बदलते-बदलते हमको भी शुद्ध करेगी, हमारा अपना जीवन भी धन्य करेगी।'

नाग-विदर्भ में भगवान् की साल भर की जेल का विचार जैसे चल पड़ा और उससे उत्साह पैदा हो रहा है, वैसे देश के अन्य हिस्सों में भी यह विचार फैलाया जा सकता है और लाखों लोग इस काम के लिए निकल सकते हैं। करके देखने की बात है। सबको आत्म-विश्वास हो जायेगा।

---

www.vinoba.in

चिंतन के क्षणों में–

(जयप्रकाश नारायण)

हम लोगों की जो चर्चा यहाँ हो रही है, उससे हमें बड़ा संतोष है। पहले से इस प्रकार हम लोग मिलते रहते, तो शायद आन्दोलन के लिए तथा हम सबके लिए वह अच्छा होता। हम लोगों का जो तंत्र बना, उससे प्रारंभ में तो लाभ हुआ, लेकिन बाद में प्रगति रुकी। अंडे में अमुक समय तक रहने पर जीव जिस प्रकार बाहर आता है; उसी प्रकार आन्दोलन का भी तंत्र से बाहर निकलना जरूरी था।

जब से मैं इस आन्दोलन में आया हूँ, मैं महसूस करता हूँ कि मेरे बारे में कुछ अधिक आशाएँ रखी गयीं। इसलिए मेरे बारे में लोगों को निराशा भी होती है। पर इस क्षेत्र में मैं नव-आगंतुक हूँ। पहले मार्क्सवाद में मानता था, हिंसा में विश्वास था, उसका थोड़ा-सा अमल भी मैंने किया था। धीरे-धीरे गांधीजी की ओर आ रहा था। लेकिन फिर भी एक राजनैतिक क्षेत्र का कार्यकर्ता ही था। विनोबा के आंदोलन में मैं जो खोज रहा था, वह मुझे मिल गया। यहाँ पर पीछे रह कर काम करने की मेरी इच्छा थी। नेतृत्व ग्रहण करने के लिए मैं अपने आपको अनधिकारी मानता था। जीवन-दान की बातें पहले हमसे हुईं, इसलिए वे मेरे जिम्मे आयीं, लेकिन उसका भार धीरेन्द्र भाई ही लें, ऐसा मैंने सुझाया था।

ऐसे कई महापुरुष होते हैं, जो अपने में ही एक 'फेनॉमेनन' होते हैं। उसी प्रकार आज विनोबा हमारे बीच हैं। हमें अपनी बातें उनके सामने रखनी चाहिए और उनकी बात मानने के लिए तैयार रहना चाहिए। उनकी रीति को हम केन्द्रित विचार नहीं कह सकते। यह भी नहीं कहा जा सकता कि तंत्रमुक्ति का विचार उन्होंने हम पर लादा है। बिहार में उन्होंने बात की थी, फिर कुजेन्द्री में की। वहाँ हमने भी समर्थन किया था। लेकिन कुछ लोगों का विरोध था, इसलिए वह निर्णय नहीं लिया गया। हमें कोई खतरा है, तो वह उनके 'डिक्टेटर' बनने का नहीं। खतरा तो हमारे भीतर ही छिपा है।

पुरी में विनोबा ने एक महत्त्वपूर्ण बात रखी—सौम्य, सौम्यतर, सौम्यतम् सत्याग्रह की प्रक्रिया। आजकल देश में सत्याग्रह के नाम से बहुत खेल खेले जाते हैं, जो सत्याग्रह कतई नहीं हैं। बापू के ज़माने में जो सत्याग्रह हुए हैं, उनका भी हमें री-एक्ज़ामिनेशन (पुनःशोधन) करना होगा। अहिंसा का शास्त्र विकसित होता जा रहा है। उसमें रेज़िस्टन्स (प्रतिकार)का हमने स्थान माना है। लेकिन उसके परिणामस्वरूप प्रेम बढ़ता है क्या, वह भी हमें देखना चाहिए। हमें सामने वाले को प्रेम से जीतना चाहिए। परिस्थिति खड़ी करके बिना शस्त्र-प्रयोग के भी काम लिया जा सकता है, लेकिन वह ऊपरी परिवर्तन होगा। उससे प्रेम बढ़ेगा नहीं। सत्याग्रह में तो प्रेम ही प्रगट होना चाहिए। यदि हमें जमीन नहीं मिलती है, तो उसका एकमात्र कारण यह है कि हमने प्रेम-शक्ति को नहीं बढ़ाया है। हमारे सत्याग्रह और असहयोग शब्द कई बार में अहिंसा की ओर नहीं ले जाते हैं।

हमें अहिंसा के संबंध में चिंतन करना चाहिए। वह केवल दिमाग का काम नहीं है। उसके लिए आध्यात्मिक जीवन की भी जरूरत है। 'पर्सनल गॉड' में मुझे विश्वास नहीं है, लेकिन नैतिक जीवन ऊँचा उठे, तो अहिंसा पर ज्यादा चिंतन हो सकता है, यह मैं मानता हूँ। इसलिए हम विनोबा के सामने सिर झुकाते हैं। सारे काम सिर्फ by the faculty of reason (तर्कशक्ति) से ही नहीं हो सकते। जीवन उटपटांग हो, पर वह बुद्धिमान हो, तो उससे ही अहिंसा का संशोधन नहीं हो सकता।

क्रांति की तीव्रता सौम्य, सौम्यतर, सौम्यतम की दिशा में ही होगी। प्रेमाचरण का जो विचार रखा गया, उसमें यह बात आती है। लेकिन हममें से बहुतों ने जो विचार प्रगट किये, उसमें वह बात नहीं आयी।

मेरा आकर्षण इस आन्दोलन की ओर उसके सामूहिक रूप के कारण ही है। गांधीजी भी इसी दिशा में गये होते, ऐसा मैं मानता हूँ। विनोबा की प्रक्रिया में मुझे अहिंसा से सामाजिक क्रांति होती हुई नजर आयी। इसका एक टेकनिक होता है। एक विचार सम्पूर्ण रूप में जनता के सामने रख दिया जाय—उस पर सब पहुँच सकें, ऐसा एक छोटा कदम दिया जाय—फिर दूसरा कदम, फिर तीसरा कदम। अन्यथा यदि समाज को एकसाथ बदलना चाहें, तो वह हो नहीं सकता।

इस आन्दोलन में, अंधे के हाथी देखने की तरह हम अलग-अलग भाग देखते हैं। धीरेन्द्र भाई ने श्रम देखा है। मैंने एक बात पकड़ ली है कि बाँट कर खाओ। आज पूरा न बाँटा जाय, तो थोड़ा बाँटो। इस प्रकार करोड़ों लोग इसे उठा लें।

सर्व-सेवा-संघ के बारे में कई लोगों को पूर्वग्रह है। पर सर्व-सेवा-संघ 'डॉमिनेट' (प्रभुत्व) करना चाहता है, यह बात ही गलत है। उसके अध्यक्ष धीरेन्द्र भाई हैं। उनका मुकाबला हममें से कौन कर सकता है? अण्णा हैं, वल्लभस्वामी हैं, सिद्धराज भाई हैं, कृष्णराज हैं। इनमें से कौन तंत्र बढ़ाना चाहता है? धीरेन्द्र भाई कह रहे थे कि अब सर्व-सेवा-संघ को फैलाना चाहिए। नारायण ने एक समय सर्व-सेवा-संघ को फैलाने के लिए एक योजना रखी थी। उस समय वह अमल में नहीं आयी। लेकिन अब इस दिशा में फिर विचार किया जा सकता है। संघ किस भूमिका से कहाँ तक पहुँचा है, इसका विचार हमें करना चाहिए। राजनीति में उसे विश्वास नहीं है, उसके लिए काकासाहब और प्रफुल्ल बाबू जैसे लोगों को भी छोड़ना पड़ा है। हाँ, यह ठीक है कि हमें सावधान रहना चाहिए। लेकिन इस बारे में हम ऊपरी तौर से न सोचें।

हमारे कार्यकर्ता सिर्फ श्रमजीवियों से ही आयेंगे, ऐसा नहीं है। हर वर्ग से आ सकते हैं। हर एक के दिल में प्रेम है। श्रमजीवी में भी लोभी-परिग्रही हो सकते हैं। केवल श्रमजीवियों के ही संगठन का स्टॅलिन का प्रयोग असफल हुआ है। यह ठीक है कि गरीबों को हमारा विचार समझाने में कुछ आसानी है। यह मैं मानता हूँ कि गरीबी से रहना आध्यात्मिक आन्दोलन के लिए अच्छा है। लोग मुझे नेतृत्व लेने की बात कहते हैं, तो उसमें यह भी कठिनाई मालूम होती है कि मेरा जीवन गरीब-सा नहीं हो सकता है। लेकिन यह आरोहण है। इसमें आगे-पीछे हम सभी चढ़ रहे हैं। पर मेरा नम्र निवेदन है कि जब हम सौम्यतर के संदर्भ में सोचते हैं, तब एक ही वर्ग से कार्यकर्ता लाने की बात उसमें बैठती है क्या? गांधीजी भी दीवान के बेटे और बैरिस्टर थे। श्रमजीवियों को बहुत 'आइडियलाइज़' करना (आदर्शवादी बनाना), गगन-विहार करना ही है।*

* सर्वोदय-आश्रम, सोखादेवरा में, मित्र-मंडल की ता० ३१-१२ से ३-१-'५७ तक हुई बैठक की चर्चा से।

भगवान का हाथ !: २.

(हरिभाऊ उपाध्याय)

मसूदा में शांति-दल की स्थापना के साक्षी मसूदा के राव नारायणसिंहजी एवं मेरी धर्मपत्नी भी थीं। हम सब साथ ही एक मोटर में मसूदा रवाना हुए। विजयनगर भी राव सा० मसूदा का ही था। मैंने रास्ते में राव सा० को बधाई दी कि भारतवर्ष का यह पहला शांति-दल आपके इलाके में कायम हुआ।

इसी समय मेरे मन में क्षत्रिय-जाति का विचार आया। राव सा० राठौर क्षत्रिय हैं। क्या क्षत्रिय-जाति इस जिम्मेदारी को नहीं ले सकती? शासन और रक्षण, दो ही तो उनके मुख्य काम थे। अब शासन चला गया, तो क्या रक्षण भी खत्म हुआ? रक्षा का भाव तो आज भी इनमें विद्यमान होना चाहिए। इन्हीं विचारों से प्रभावित होकर मैंने राव सा० से पूछा भी था। सब बातें शुरू से ही वे बड़े ध्यान और चाव से सुन रहे थे। उन्होंने कहा, "मैंने तो पहले ही से सोच लिया कि इस दल में मैं अपना नाम दूँगा।" यह सुनते ही मानों मेरी क्षत्रिय-जाति-संबंधी पूर्वोक्त कल्पनाएँ साकार हो उठीं। मैंने हर्ष और धन्यता के स्वर में कहा:

"रावसाहब, आपका नाम तो मेरी निगाह में था ही, पर मैं समझता हूँ, आपको यह काम भी उठा लेना चाहिए। कम-से-कम क्षत्रियों को तो आप उठा ही सकते हैं। यदि क्षत्रियों ने इसका जिम्मा ले लिया, तो न केवल राजस्थान में, बल्कि सारे भारत में उनकी अपूर्व सेवा गिनी जायगी। राज-सत्ता न रहने पर भी, इस सेवा और उत्सर्ग के कारण जनता के द्वारा जो स्नेह और आदर उन्हें मिलेगा, उसे संसार की कोई शक्ति नहीं छीन सकती। आज राजस्थान में ही नहीं, सारे देश में क्षत्रिय-जाति के पास कोई संदेश-योजना, कोई कार्यक्रम नहीं है। सब अंधेरे में भटक रहे हैं और अपनी शक्ति बरबाद कर रहे हैं। राजस्थान में भू-स्वामियों की शक्ति व्यर्थ हो गयी। अब यदि क्षत्रिय वीर इस शांति-रक्षा के काम में जुट पड़ें, तो न

www.vinoba.in

केवल वे अपना ही भविष्य उज्ज्वल बना लेंगे, अपितु सर्वोदय और समाजवादी समाज की स्थापना करने में शांति-स्थापना का यह नया अध्याय लिखेंगे। पहले जमाने में क्षत्रियों ने मार कर और मर कर सेवा की, अब सिर्फ मरने की जरूरत है। मरना उन्हें नये सिरे से सीखना नहीं है। जो मारने जाता है, वह मरने की तैयारी से ही जाता है। मरने की वह तैयारी अब क्षत्रियों की है। यह उनकी जन्म-घुटी में ही उन्हें मिलता है। सिर्फ 'मारना' छोड़ना है और 'मरने' की विद्या सीखनी है, उसका शास्त्री बनना है, सीखना भी है और सिखाना भी है।" यह कहते-कहते मुझे मानों क्षत्रिय वीरों का बड़ा उज्ज्वल भविष्य दीखने लगा। रावसा० सुन रहे थे। गंभीरता से बोले, "दासाहब, हम इस काम को करेंगे। राजस्थान की, कम-से-कम अजमेर राज्य की जिम्मेदारी मैं ले सकता हूँ। जितना बनेगा, प्रयत्न करूँगा।"

उनका यह आश्वासन सुन कर मुझे ऐसा लगा, मानों सचमुच भारत के इतिहास में शांति-युग का नया अध्याय लिखने का श्रीगणेश हो रहा है। यह भी मुझे ईश्वरी संकेत जैसा मालूम हुआ।

अभी और आगे सुनिये। हम लोग आगे की सीट पर बैठे हुए थे। पीछे रानीजी तथा भागीरथीदेवी थीं। जब राव सा० ने आश्वासन दिया, तो मैंने मज़ाक में कहा, "राव सा०, आपने दल में नाम लिखाया, सो तो ठीक; परंतु मैं आपको मरने नहीं दूँगा। मरने का अवसर उपस्थित हो जायगा तो पहले मैं मरूँगा, आपको नहीं जाने दूँगा।"

राव सा०—"वाह, यह कैसे होगा? मरना तो क्षत्रियों का काम है, न कि ब्राह्मणों का। ब्राह्मण मरने जाय और क्षत्रिय बैठा रहे, यह कैसे हो सकता है?"

"बात यह है कि आप अभी जवान हैं। रानी पीछे बैठी हैं। मैं बूढ़ा हो चला। जब तक बूढ़े लोग मरने के लिए हों, तो जवानों को क्यों झोंका जाय?"

"नहीं, यह नहीं होने का। क्षत्रिय का काम क्षत्रिय ही करेगा।"

यह विनोद करते-करते मुझे एक बात सूझी। क्यों न रानीजी को टटोलूँ? मैंने विनोद में कहा—"रानीजी, हम दोनों में तो मरने की होड़ लगी है कि पहले कौन मरे—अब आप बताइये, जब हम मरने जायँगे, तो आप क्या करेंगी? क्या चरखा कातेंगी?"

उन्होंने, जैसे क्षत्राणी का तेज जग गया हो, कहा, "वाह, मैं क्यों चरखा कातूँगी?—मैं भी जाकर मरूगी! जौहर-व्रत क्षत्राणियों का ही निकाला हुआ है! क्षत्राणियाँ उसे अभी भूली नहीं हैं!"

इन आशातीत दृढ़तापूर्ण उद्‌गारों से मैं स्तब्ध हो गया। भगवान्, आज यह क्या हो रहा है? एक-से-एक अनहोनी बातें कैसे प्रत्यक्ष होती जा रही हैं! मेरा लोभ बढ़ा—"रानीजी, मरना ही काफी नहीं है। अब जौहर-व्रत का नया संस्करण करना होगा। इस काम के लिए—शांति-स्थापना के लिए (रानीजी का नाम भी शांतिदेवी है)—आपके ही काम के लिए, काम करते-करते मरना होगा—यों ही जान नहीं गँवाना होगा। बहनों में, खास कर क्षत्रिय बहनों में तो आप बहुत काम कर सकती हैं। उन्हें आप जगा दें, तो राव सा० का बहुत काम बन जाय।"

उन्होंने दृढ़ता के स्वर में कहा, "जरूर करूँगी, और किया भी जा सकता है।"

अभी मसूदा दूर था। राव सा० तथा रानी साहबा-की योजनाएँ बनने लगीं—कैसे राजपूतों को एकत्र किया जाय, सभा बुलायी जाय या पहले निजी तौर पर सबसे बात की जाय। रानीजी सोचने लगीं—मेरी फलाँ बहन, फलाँ सहेली इसमें अवश्य योग दे सकती है, आदि। मतलब यह कि राव-रानी, दोनों का दिमाग काम करने लग गया।

मसूदा पहुँचे, तो वहाँ तो हद ही हो गयी। सीधे सभा में, जो राव सा० के 'विजयगढ़' में थी, रानीजी खुले मुँह चली गयीं। पहली बार मसूदा-निवासियों ने अपनी रानी माता के दर्शन किये।

मसूदा के लोगों ने अपना अहोभाग्य माना। फिर सभा में मैंने राव सा० तथा रानी सा० की प्रतिज्ञा या आश्वासन का जिक्र किया और शांति-दल की स्थापना का सुझाव रखा। उस दिन सुदैव से गणेश-चतुर्थी थी। हिन्दू और जैनी, दोनों के पुण्य-दिन। 'विजयगढ़' में शांतिदल स्थापित हुआ, जिसमें पहला नाम खुद रख कर दल का भार उन्होंने लिया। एक मुसलमान भाई ने भी अपना नाम दिया। दोनों जगह मैंने साफ-साफ बताया कि यह सेवा-दल नहीं, मरने वालों का दल होगा!

('जीवन साहित्य' से) (समाप्त)

भूदान-आंदोलन की कार्य-रचना और कुछ परिवर्तन

(वल्लभस्वामी, सहमंत्री, अ. भा. सर्व-सेवा-संघ)

१. सत्याग्रही लोकसेवक का निष्ठा-पत्र

तन्त्रमुक्ति का निर्णय लेने के बाद आगे की कार्यरचना के बारे में विचार-विनिमय चलते रहे।

१ दिसंबर को सत्याग्रही लोकसेवक के लिए प्रतिज्ञा-पत्र तैयार हुआ। बाद में उसमें कुछ वृद्धि हुई। उस पर भी चर्चा होकर आखिरी रूप जो तय हुआ है, वह नीचे दिया जाता है। प्रतिज्ञा-पत्र के बजाय "निष्ठा-पत्र" शब्द रखने का तय हुआ है।

सत्याग्रही लोकसेवक का निष्ठा-पत्र

(१) सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह में मेरी दृढ़ निष्ठा है और तदनुसार जीवन बिताने की मैं कोशिश करूगा।

(२) लोकनीति की स्थापना से ही दुनिया में सच्ची स्वतन्त्रता हो सकेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। इसलिए मैं किसी प्रकार की दलीय राजनीति (पार्टी पॉलिटिक्स) में या सत्ता की राजनीति (पॉवर पालिटिक्स) में भाग नहीं लूगा। भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्षों के व्यक्तियों का समान आदर-बुद्धि से सहयोग लेने की मेरी वृत्ति और प्रयत्न रहेगा।

(३) बिना किसी कामना के, समर्पण-बुद्धि से मैं लोक-सेवा करता रहूँगा।

(४) जाति (Caste), वर्ग (Class) या पंथ (Creed) के किसी प्रकार के संकुचित भेदों को मैं जीवन में स्थान नहीं दूँगा।

(५) मैं अपना पूरा समय और चिन्तन-सर्वस्व सर्वोदय के प्रत्यक्ष साधन-स्वरूप भूदान-मूलक ग्रामोद्योग-प्रधान अहिंसक क्रान्ति के काम में लगाऊँगा।

स्थान— पूरा नाम और पता : हस्ताक्षर

तारीख— ....

---

२. जिला-सेवक के बजाय "निवेदक"

एक-एक जिले की जिम्मेवारी उठा सकने वाला कम-से-कम एक लोकसेवक हर जिले में हो, यह सुझाव पलनी की बैठक में श्री विनोबाजी ने रखा। ऐसे सेवक के लिए जिला-सेवक शब्द का उपयोग तब से होता आया है। जिला-सेवक के बारे चर्चा करते हुए आम राय यह रही कि जिला बड़ा हो, तो एक से अधिक लोक-सेवक [illegible] जिले को [illegible]; जिला छोटा हो, तो एक से अधिक जिले भी एक सेवक को सौंपे जा सकते हैं। ऐसी स्थिति में जिला-सेवक शब्द गैर-लागू लगता था। क्षेत्र-सेवक नाम दिया जाय, ऐसी भी एक सूचना थी। आखिर में तय हुआ है कि जिला-सेवक का जो कार्य है, वह ध्यान में लेते हुए "निवेदक" शब्द अपनाया जाय। अन्य लोकसेवकों और जिले का निवेदन वह संघ से करेगा और संघ का निवेदन वह जिले से और लोकसेवकों से करेगा।

अब तक जितने लोकसेवकों के नाम या प्रतिज्ञा-पत्र वगैरह हमारे पास पहुँचे थे, उनमें से करीब-करीब सभी को उनकी पहुँच तथा आगे किनके पास अपनी रिपोर्ट भेजना है, उसकी जानकारी को भेजी गयी है। इसके पहले यह काम नहीं हो सका, क्योंकि कई बातों पर विचार-विमर्श होकर आखिरी निर्णय लेना था।

सब लोकसेवकों के पास छपे हुए निष्ठा-पत्र की दो नकलें भेजी गयी हैं। दोनों नकलें भर कर सर्व-सेवा-संघ, पोस्ट-खादीग्राम, मुंगेर, (बिहार), इस पते पर भेजने की सूचना दी गयी है। निष्ठा-पत्र के साथ अपना थोड़े में परिचय और किस क्षेत्र में काम का जिम्मा ले सकते हैं, यह लिखने के लिए भी विनती की गयी है। हो सके, तो अपना फोटो भी भेजना है। संभव है कि कइयों ने, पहले भेजे हुए प्रतिज्ञा-पत्र आदि के साथ, ऊपर की जानकारी भेजी हो। फिर भी छपे हुए निष्ठा-पत्र भर कर भेजते समय भी ऊपर की जानकारी फिर से भेजें, जिससे ऑफिस के काम में सुविधा रहेगी। पहले फोटो न भेजा हो, तो भेजने की कृपा करें। पहले एक फोटो भेजा हो, तो भी उसकी दूसरी नकल भेज सकें, तो सुविधा होगी। अन्य सूचनाएँ इसी अंक में अन्यत्र।

www.vinoba.in

विनोबा के साथ श्रीमती चेस्टर बौल्स: १.

(दामोदरदास मूदड़ा)

श्रीमती चेस्टर बौल्स तंजावर ज़िले के कोरडचेरी नामक छोटे-से गाँव में विनोबा से मिलने आयीं। इंग्लैण्ड और अमेरिका में कूपदान-यज्ञ का जो आंदोलन चल रहा है, उस पर श्रीमती बौल्स के भी हस्ताक्ष हैं।

आने से कई दिन पहले उन्होंने विनोबा को लिखा था कि मैं आपसे मिलने आने वाली हूँ। पिछली बार उत्कल में जब वे विनोबा से मिलने आयी थीं, उस वक्त उन्होंने देखा था कि विनोबा के गले में कुछ तकलीफ है। इसलिए अब की बार एक-दूसरे का अभिवादन करने के बाद सबसे पहला सवाल श्रीमती बौल्स ने यह पूछा कि "क्या अब भी आपके गले में कोई तकलीफ है?"

उनका निहोरा मानते हुए विनोबा ने अपनी दाहिनी तरफ बैठने के लिए उनसे विनती की। अपने बायें कान की तरफ इशारा करते हुए विनोबा ने कहा, "ज़रा ऊँचा सुनता हूँ।" अपने आसन पर बैठते हुए श्रीमती बौल्स ने कहा, "वही हाल मेरा है। अब आप मेरी आवाज़ सुन सकते हैं?"

विनोबा ने हाँ कहने के लिए सिर हिलाया। बात-चीत शुरू हुई। सबसे पहले श्रीमती बौल्स ने श्रीमान् बौल्स की तरफ़ से माफी माँगी कि वे दक्षिण में विनोबा से मिलने नहीं आ सके और कहा, "आपके कार्यक्रम की तरक्की देख कर, खास कर उसके ग्रामदान के पहलू की तरक्की देख कर उन्हें बड़ी खुशी हुई है।"

पिछली बार उन्होंने विकास-योजना के कुछ गाँव देखे थे। उनके विषय में पूछने लगीं, "विनोबा, क्या इन गाँवों की प्रगति हुई है?"

विनोबा ने उत्तर दिया, "हाँ, उनकी अपने ढंग से प्रगति हो रही है। लेकिन जब तक गरीबी का सवाल हल नहीं होता, तब तक कोई तरक्की वे नहीं कर सकते। श्री डे मुझसे कह रहे थे कि उस योजना से गरीब लोग कोई खास फायदा नहीं उठा सकते। जो लोग कुछ हैसियत रखते हैं, वे ही फायदा उठा लेते हैं। श्री डे ने अपने अनुभव के बारे में कोई गुप्तता नहीं रखी और यह क़बूल किया कि जो लोग सबसे गरीब हैं, उन तक अभी वे नहीं पहुँच पाये। यही उनकी दिक्कत है। वे लोग ऊपर से नीचे की ओर काम करते हैं।"

"क्या आपने श्री डे से वैसा कहा?"

"जी हाँ, और उन्होंने मेरी बात मानी।"

"विनोबा, इस सवाल को हल करने का आपका क्या उपाय है?"

"स्पष्ट ही है, ग्रामदान।"

"इसमें शक नहीं, और तभी विकास का कार्य-क्रम सही दिशा में क़दम बढ़ा सकता है।"

"जी हाँ, सही है।"

विनोबा ने मदुराई जिले का अपना अनुभव बतलाते हुए कहा कि विकास-योजना के अधिकारियों को उस जिले के ग्रामदान-आंदोलन में खास दिलचस्पी है।

श्रीमती बौल्स के साथ उनके सेक्रेटरी के नाते श्री हैरिस वॉफोर्ड आये थे। उन्होंने विनोबा से पूछा, "क्या विदेशों में भी गरीब और अमीर के बीच की खाई पाटने के लिए भूदान का उपयोग हो सकता है?"

"मैंने कई बार कहा है कि भूदान दुनिया के किसी खास हिस्से तक महदूद नहीं है। उसका संबंध जागतिक समस्याओं से है और परिस्थिति के अनुसार वह सब जगह उपयोगी हो सकता है। क्या मैंने जापान-आस्ट्रेलिया का ज़िक्र करते हुए यह नहीं कहा था कि आस्ट्रेलिया को अपनी ज़मीन पर जापानियों का स्वागत करना चाहिए? मेरी यह दृढ़ निष्ठा है कि जमीन ईश्वर की है। वह किसी व्यक्ति या राष्ट्र की नहीं है।"

"और संपत्तिदान के बारे

"वह इतना महत्व नहीं रखता, क्योंकि आखिर पैसे का कोई असली मूल्य नहीं है। वह तो एक कल्पना है। आपके जेब में चाहे जितना पैसा हो, लेकिन उसके बदले में यदि आपको जरूरत की कोई चीज़ न मिल सकी, तो आपका सारा पैसा बेकार है। आपके पैसे का जो कुछ मूल्य है, वह इसलिए है कि किसी-न-किसी सबब से मैं अपनी मेहनत की उपज बेचना चाहता हूँ। लेकिन जमीन के साथ यह बात नहीं है। उसका अपना एक अंगभूत, निरपेक्ष मूल्य है।"

बीच में ही श्रीमती बौल्स ने कहा, "लेकिन कुछ देश कच्चे माल से और दूसरी प्राकृतिक संपत्ति से संपन्न हैं और दूसरे कुछ देश उनकी तुलना में बहुत दरिद्री हैं। तो क्या इस विषय में मुक्त विनिमय (खुले अदलबदल) का तत्त्व लागू किया जा सकता है?"

विनोबा, "बेशक! कच्चे माल का और प्राकृतिक साधनों का मुक्त विनिमय होना चाहिए। प्राथमिक आवश्यकता की चीज़ें हर गाँव में उसी जगह बननी चाहिए। अदल-बदल का सवाल सिर्फ गौण आवश्यकताओं के बारे में ही पैदा होना चाहिए।"

श्री हैरिस ने चीन और इज़राइल के सहकारी आंदोलन का ज़िक्र किया और जानना चाहा कि क्या भारत इन देशों से कुछ सीख सकता है?

विनोबा ने, उन आंदोलनों में जो कुछ अच्छी बातें हों, उनको अपनाने की तत्परता दिखलायी। उदाहरण के लिए, उन्होंने धान की जापानी खेती का उल्लेख किया और कहा कि हर देश की अपनी कुछ आदतें और परंपराएँ होती हैं। सहकारी पद्धति को शायद भारत उसी रूप में स्वीकार न कर सके। इजराइल और भारत की परिस्थितियों में फ़र्क़ हो सकता है। आपको इन सारी बातों का विचार करना होगा।

"लेकिन भारत सरकार उत्पादकों की करीब १ लाख सहकारी समितियाँ इस देश में स्थापित करना चाहती है। हम जानना चाहेंगे कि क्या आप इस योजना का समर्थन करते हैं?"

"ग्रामदान के बिना न तो वह योजना व्यवहार्य होगी और न उपयोगी ही होगी। ग्रामदान की बुनियाद पर ही वह उपयोगी साबित हो सकती है।"

यहाँ श्रीमती बौल्स ने यह जानना चाहा कि "ग्रामदान का अमल होने पर क्या ग्रामदानी गाँवों के शासन में कोई परिवर्तन किया जाता है? और अगर किया जाता है, तो वह किस तरह का होता है?"

विनोबा ने कहा, "ग्रामदान का मतलब है, लोगों की सारी मनोवृत्ति में ही परिवर्तन, जिससे कि वे नयी परिस्थिति के अनुरूप अपने सारे जीवन को ही बदल सकें। आज 'क्ष' को 'य' की शादी के लिए पैसे की जरूरत होती है और वह पैसा 'ज्ञ' से उधार लेता है। लेकिन ग्रामदानी गाँवों में कोई दिक्कत ही नहीं होगी, क्योंकि वहाँ तो विवाह सारे गाँव का उत्सव होगा और व्यक्तिगत रूप से क़र्ज़ लेने का कोई सवाल ही पैदा नहीं होगा।"

अखिल भारतीय पदयात्रा के प्रवर्त्तक श्री चेरियन टॉमस से श्रीमती बौल्स की नयी देहली में भेंट हुई थी। श्री चेरियन का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा, "चेरियन एक ऐसे दिन का सपना देख रहे हैं, जब कि समूचा राष्ट्र जमीन पर से व्यक्तिगत मालकियत छोड़ देने का संकल्प कर लेगा।"

इस संबंध में श्रीमती बौल्स को यह जानकारी दी गयी कि तालुका (तहसील) के स्तर पर इसका आरंभ हो गया है और स्वतंत्रता-दिवस के अवसर पर तिरुमंगलम् तालुका के लोगों ने तीन महीने के भीतर 'तालुका-दान' करने का संकल्प भी घोषित किया है। उस अवसर पर तालुका के प्रतिनिधियों ने जो प्रतिज्ञा की, उसकी भाषा देख कर श्रीमती बौल्स को बड़ी प्रसन्नता हुई।

श्री आर्यनायकमजी हाल ही में सेवाग्राम से लौटे थे। उन्होंने यह समाचार सुनाया कि महाराष्ट्र तो इस मामले में चुपके से आगे बढ़ गया है। कोल्हापुर जिले के 'आजरा महाल' में ५२ ग्रामदान मिल चुके हैं। यह घटना एक सप्ताह पहले की थी। लेकिन उसका समाचार अभी-अभी बंबई के एक मराठी दैनिक में प्रकाशित हुआ था, जो विनोबा को सुनाया गया। इस पर हमारे अतिथियों को बड़ा ताज्जुब हुआ और उन्होंने कहा कि "अमेरिका में इस तरह से अगर दस गाँव भी अपना स्वामित्व-विसर्जन कर देते, तो उस चमत्कार से सारा देश चकित हो जाता और सारे अखबारों में वह संवाद पहले पृष्ठ पर पूरे पृष्ठ को व्यापने वाले शीर्षकों में छपता।"

विनोबा ने अखबार में छपे हुए दो कालम के शीर्षक वाले दूसरे एक समाचार की तरफ इशारा किया। खून के मामले में पकड़े गये किसी व्यक्ति के बारे में वह समाचार था। विनोबा ने कहा, "अगर यह फिरका-दान हिंसक उपायों से हुआ होता, तो यह खबर भी मोटे टाइप में छपती, क्योंकि तब वह क्रांति समझी जाती!"

अतिथियों की मुद्रा से यह स्पष्ट था कि उन्हें समाचार-पत्रों की अनास्था से आश्चर्य हुआ। स्वामित्व के स्वेच्छा से विसर्जन की इस क्रांतिकारी प्रक्रिया की तरफ से अखबार इतने उदासीन रहें, यह उनके लिए आश्चर्य की बात थी। लेकिन विनोबा का रुख ऐसा मालूम हुआ कि प्रचार के इन आधुनिक साधनों का वे ज्यादा भरोसा नहीं करते। उनका यह विचार है कि क्रांतियाँ अपनी पद्धति से चुपचाप संपन्न होती हैं और जब वे सफल होती हैं, तभी दुनिया उनके बारे में जानती है।

www.vinoba.in

भूदान-यज्ञ

२२ फरवरी सन् १९५७

आज ही और हमेशा भी !

(वीनोबा)

साधक को दो प्रकार की मनोवृत्ती रखनी चाहीअे । अेक तो अैसा अुत्साह रखना चाहीअे की "भूदान का काम मैं कम-से-कम समय में, जल्द-से-जल्द, अीसी साल पूरा करूँगा ।" दूसरी, तैयारी यह होनी चाहीअे की "जींदगी के अंत तक यह काम चलेगा, तो भी मैं अुसे करने को तैयार हूँ, और मैं यह करता ही रहूँगा ।" संस्कृत में पहली वृत्ती को अुत्साहम् और दूसरी वृत्ती को धृतीः कहते हैं । 'धृत्युत्साह-समन्वीतः'–धृती और अुत्साह, दोनों कार्यकर्ताओं में होने चाहीअे । भगवान् का आशीर्वाद, जो सब्र रखता है, धैर्य रखता है, अुसीको प्राप्त होता है । यही 'कुरान' ने भी कहा है । अीस वास्ते कार्यकर्ताओं को दुहरी वृत्ती रखनी चाहीअे की अीसी साल काम खत्म करेंगे और जींदगी भर प्रयत्न करने के लीअे भी तैयार रहेंगे । तब दोनों बातें होंगी। याने अीस साल काम भी होगा और जींदगी भर प्रयत्न चलेगा–अंत तक काम चलेगा, क्योंकी कार्य का अेक पहलू है, छोटा; और दूसरा पहलू है, बड़ा जो छोटा पहलू है, वह जल्द से जल्द सधना चाहीअे । कोअी कारण नहीं है की हींदुस्तान के भूमीहीनों को भूमी का हक्क जल्द से जल्द क्यों नहीं दीया जा सके ।

हम दूसरी बात यह कहना चाहते हैं की यह दूसरे पर कृपा करने का आंदोलन नहीं है । यह दूसरों की ज़मीन छीनने का कार्यक्रम नहीं है । अीसमें हर अेक को देना ही है । कम्यूनीस्ट समझते हैं की 'क्लास वार' होगी, तब काम होगा। हम कहते हैं की 'क्लास वार' वाला तो मैं हूँ ! तुमने तो अेक ही क्लास बनाया, लेकीन मैं दो क्लास बना रहा हूँ–'अुदार' और 'कंजूस' ! अीन दोनों के बीच लड़ाअी होगी ! अुदार पक्ष में श्रीमान् भी होंगे और गरीब भी । कंजूष पक्ष में भी गरीब और श्रीमान्, दोनों होंगे । फीर अीन दोनों में अैसी लड़ाअी चलेगी, जैसे सूर्यनारायण आता है, तो अंधकार मीट जाता है, वैसे कंजूस पक्ष भी अुदार बन जायेगा। याने अुदार-वर्ग खड़ा हो जायेगा, तो कंजूस-वर्ग वैसे ही पीघल जायेगा; क्योंकी अुदार के सामने कंजूस टीक नहीं सकते, क्षमा करने वालों के सामने क्रोध टीक नहीं सकता । और जीत दोनों की होगी ! अैसी यह अद्भुत लड़ाअी है ! अीसमें कीसीकी हार ही नहीं है । अैसी ही लड़ाअी हम लड़ना चाहते हैं । अीसीलीअे फासला लंबा है । अुसमें सत्याग्रह का वीधायक रूप, जो अत्यंत सौम्य होगा, प्रकट होगा । अुसीमें हमको सारा जीवन देना है । अीस तरह अेक बाजू से हमारा काम अीतना लंबा है, लेकीन अुत्साहवर्धक भी है । दूसरी बाजू से अीसी साल काम को पूरा भी करना है !

तंबीकोट्टै, तंजाअूर, ६-२

कॉमन प्लेटफॉर्म !

(विनोबा)

जब हम कहते हैं कि गाँव का एक गाँव-परिवार बनाना 'आसान' है, तो उसमें कुछ भी कठिनाई नहीं है, ऐसी बात नहीं ! बिना कष्ट के कोई भी अच्छा काम नहीं बनता । इसलिए कुछ कष्ट तो मनुष्य को करना ही पड़ता है । मामूली विद्या-प्राप्ति के लिए भी कितना कष्ट करना पड़ता है ? व्यास मुनि ने 'महाभारत' में कहा है–"सुखार्थिनो कुतो विद्या, कुतो विद्यार्थिनो सुखम् ?" विद्या चाहते हो, तो सुख कहाँ से मिलेगा ? विद्या-प्राप्ति के लिए सुख छोड़ना पड़ता है ।

महाभारत में एक कहानी है । द्रौपदी से सत्यभामा ने पूछा, "स्त्रियों को सुख कैसे प्राप्त होगा ?" द्रौपदी ने कहा, "दुःखेन साध्वी लभते सुखानि"-साध्वी दुःख भोग कर सुख प्राप्त कर सकती है । याने सुखप्राप्ति के लिए कुछ कष्ट तो सहन करने ही पड़ते हैं । मामूली व्यापार में भी घर छोड़ कर परदेश जाना पड़ता है, तकलीफ उठानी पड़ती है । इसलिए कोई भी बड़ा काम बिना तकलीफ के नहीं हो सकता । उतने कष्ट के लिए लोग तैयार भी हैं, परंतु वे संन्यास या गृह-त्याग का बड़ा कष्ट सहन नहीं कर सकते। लोगों को धर्म-मार्ग प्रिय है,फिर भी लोग धर्म पर वैसा अमल नहीं कर सकते हैं । उसका मुख्य कारण यह है कि उनके सामने लोकसुलभ रास्ता नहीं रखा गया । पुराणों में स्वर्ग का वर्णन बहुत अच्छा आता है ! हमारे कम्युनिस्ट भाई भी स्वर्ग का वर्णन करते हैं कि हमारी आदर्श रचना अमुक प्रकार की होगी, तब स्टेट रहेगी ही नहीं, आदि ! पर जनता पुराणवालों और कम्युनिस्टों से पूछती है कि तुम्हारा स्वर्ग अच्छा तो है, लेकिन उसकी सीढ़ी तो बताओ कि कहाँ है ? पुराणवाले राह दिखाते हैं कि अगर तुम स्वर्ग देखना चाहते हो, तो तुमको मरना पड़ेगा ! लोग कहते हैं कि तुमने खूब स्वर्ग बताया ! क्या मरने के बाद स्वर्ग देखेंगे ? कम्युनिस्ट लोग कहते हैं कि मार कर स्वर्ग प्राप्त हो सकता है। लेकिन लोगों के लिए यह भी मुश्किल है । वे न मरने के लिए तैयार हैं, न मारने के लिए ! लोग कहते हैं, ऐसी कोई राह बताओ कि इसी हालत में, इसी जगह, इसी रीति से स्वर्ग प्राप्त हो सके, तभी उस राह पर हम चल सकते हैं । वह राह ग्रामदान में है ! और सारे गाँव की सामूहिक मालकियत बनाने की राह धर्म-पालन के लिए सब से आसान है ।

विकास के लिए गृहस्थाश्रम का उपयोग है, लेकिन बात अगर वहीं तक रुक गयी और अपने बच्चों में ही कहीं हम सीमित रह गये, तो वह संकुचितता हो जायगी । अतः उसको और व्यापक बनाना होगा, बना सकते हैं। जैसे "मैं" छोड़ कर "परिवार" तक बढ़े, वैसे ही अब परिवार से आगे बढ़कर "सारा गाँव अपना", कह सकते हैं ।

परमेश्वर का अर्थ है–अत्यन्त फैला हुआ । परमेश्वर इस पार से उस पार तक फैला है । अतः जितने विस्तार तक हम अपने को फैला सकेंगे, उतने हम ईश्वर के नजदीक ही जायेंगे। पर अपना परिवार 'विश्वव्यापक' बनाओ, ऐसा अगर हम कहेंगे, तो हम फूले हुए मेंढ़क के मुताबिक फूट जायेंगे। अपना घर छोड़ो, ऐसा कहना जितना कठिन है, उतना ही अपना घर विश्वव्यापी बनाना भी कठिन है । पर हिंदुस्तान में ये ही दो बातें चलती हैं । या तो 'घर को छोड़ दो' याने संन्यास का मार्ग ले लो, या फिर 'सारी दुनिया को कुटुम्ब बनाओ !' ये दोनों ही बातें आम लोगों के लिए कठिन हैं अतः हमने बीच की राह दिखायी । इसके लिए काल भी अनुकूल है । विज्ञान के जमाने में छोटे-छोटे परिवार टिक भी नहीं सकेंगे । इसलिए ग्रामदान की बात विज्ञान के जमाने के बहुत लायक है और वैज्ञानिकों और अर्थशास्त्रियों को यह जितनी अच्छी लगती है, उतनी ही धर्मशास्त्रियों को भी । ऐसा यह 'कॉमन प्लॅटफॉर्म' है, जहाँ अर्थशास्त्री, वैज्ञानिक और धर्मशास्त्री, सब एकत्र आते हैं ।

तिरुवेय्याड, तंजाऊर, २२-१-'५७

...मनुष्य भौतिक गवेषणा और विकास में कितना ही आगे क्यों न बढ़ जाये, पर जीवन के सही लक्ष्य की पूर्ति की दिशा में तब तक कुछ नहीं बनेगा, जब तक कि वह आत्म-गवेषणा, आत्मान्वेषण और आत्म-विकास की ओर उन्मुख नहीं होगा । जैसा कि भारतीय महर्षियों ने कहा है—जिसने आत्मा को नहीं जाना, अपने आपकी परख नहीं की, उसने कुछ नहीं जाना । सब कुछ जान कर भी वह अनजान है । भारतीय तत्त्व-दर्शन ने उस विद्या को अविद्या कहा है, उस ज्ञान को अज्ञान शब्द से संबोधित किया है, जहाँ आत्मा का निष्ठापूर्ण अथवा दृढ़ लगाव नहीं है।

हर मनुष्य चाहता है; दूसरा उसके प्रतिकूल न बरते, उसके साथ असत्य न बोले उसे धोखा न दे, विश्वासघात न करे, ठगे नहीं । कितना अच्छा होता कि दूसरों से ऐसा चाहने के साथ-साथ वह स्वयं भी अपने लिए ऐसा सोचता !

—आचार्य श्री तुलसी

www.vinoba.in

पंचामृत

हंगरी से क्या सीखें ?

यह दुर्भाग्य की बात है कि हंगरी के लोगों ने अपनी आजादी की लड़ाई में हिंसा से काम लिया। आज़ादी हासिल करने में वह नाकामयाब साबित हुई। अहिंसक प्रतिकार कुछ मुश्किल है। लेकिन अगर उतनी ही हिम्मत के साथ उसका प्रयोग किया जाता, तो कहीं अधिक फायदा होता।

हथियारों की लड़ाई में शिकस्त खाने के बाद अब हंगरी के लोग निःशस्त्र प्रतिकार पर भरोसा रखते हुए मालूम होते हैं, जिसमें कि सार्वत्रिक हड़ताल भी शामिल है। अब देखना यह है कि लड़ाई की आज की मंजिल में हंगरी के लोग इस हिकमत से जीत सकेंगे या नहीं।

उन्होंने पहले ही हथियारों की पनाह ली और जब हार गये, तभी वे निःशस्त्र प्रतिकार की ओर मुड़े। इसलिए अब वे उन मानसिक लाभों से और नैतिक सामर्थ्य से वंचित रह गये हैं, जो कि शुरू में ही अहिंसक प्रतिकार का रास्ता स्वीकारने पर उन्हें प्राप्त हुए होते। अब निःशस्त्र प्रतिकार के साधन से उनकी लड़ाई मुश्किल हो जायगी। पर अगर उनमें काफी हिम्मत और कुर्बानी का माद्दा हो, तो अब भी वे जीत सकते हैं।

एक शक्तिशाली आक्रमणकारी राज्य का सामना करने के लिए जो छोटा-सा राष्ट्र सैनिक शक्ति का आश्रय करता है, वह अधिक-से-अधिक अपनी वीरता ही दिखा सकता है। वह आक्रमणकारी को हरगिज हरा नहीं सकता। उस छोटे राष्ट्र की मदद करने के लिए दूसरा बलवान राज्य अगर आ जाय, तो भी नतीजा कुछ अच्छा नहीं होगा। आक्रमणकारी की हार हो सकती है, परन्तु उस लड़ाई के दौरान में वह छोटा राष्ट्र वीरान हो जायगा, जैसा कि कोरिया में हुआ और आज तो यह भी संभव है कि उसका नतीजा अन्तिम जागतिक युद्ध की अणु-प्रदीप्त ज्वालाओं में हो।

यदि ऐसा न भी हुआ, तो भी विजय के बाद उस छोटे-से राष्ट्र में सैनिक संघर्ष के फलस्वरूप जो सत्ता कायम होगी, वह लोकतन्त्र-विरोधी होगी। उस संघर्ष का अच्छे-से-अच्छा नतीजा यह माना जा सकता है और बुरे-से-बुरा नतीजा यह हो सकता है कि उस छोटे राष्ट्र में कायम होने वाली सरकार उसकी मदद में आने वाले बलवान राज्य की कठपुतली होगी।

छोटे राष्ट्र के लिए एक दूसरा चारा भी है। चारा यह नहीं है कि वह छोटा राष्ट्र डर के मारे आक्रमणकारी के सामने घुटने टेक दे। ऐसे आचरण को कभी बर्दाश्त नहीं किया जा सकता।

पर्याय यह है कि आज़ादी की हिफाज़त के लिए हिंसा का भरोसा नहीं किया जा सकता और ऐसी हिंसा की तैयारी में आज़ादी में रुकावट पैदा हुए बिना नहीं रहती, बल्कि लोगों की आर्थिक स्थिति और भी खराब होती चली जाती है। इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए तथा यह निश्चित रूप से मान लेना चाहिए कि अहिंसक प्रतिकार के मार्ग का स्वीकार करने से ही लोग अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं या उसका संरक्षण कर सकते हैं। यह रास्ता आसान नहीं है। कई प्रकार से वह बहुत ज्यादा मुश्किल है और उसके लिए कहीं अधिक साहस तथा वीरता की जरूरत है। लेकिन उसमें सफलता की संभावना निहित है।

ऐसी लड़ाई बुनियादी प्रश्नों पर समझौता हुए बिना, ऐसे तरीकों से की जा सकती है, जो एक ऊँचे आदर्श को उच्चतर बना सकते हैं। जो लोग प्रतिकार के इन तरीकों से काम लेते हैं, उनको कुछ नैतिक और व्यावहारिक फायदे मिलते हैं; बल्कि सच तो यह है कि जो कोई राष्ट्र सच्चे दिल से इन साधनों को अपनायेगा और उनके द्वारा अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहेगा या उसका संरक्षण करना चाहेगा, ऐसे हरेक राष्ट्र को वे नैतिक व्यावहारिक फायदे प्राप्त होंगे। चाहे फिर वह राष्ट्र उस लड़ाई के बाहर दूसरी सारी परिस्थितियों में हिंसा का त्याग करने के लिए तैयार हो या न हो।

(१) जब कोई राष्ट्र फौज़ी ताकत का भरोसा नहीं करता, अपनी सारी उत्पादन-सामग्री और मानव-शक्ति अनुत्पादक, अपव्ययी और मानव-शक्ति अनुत्पादक, अपव्ययी और अन्ततः अनुपयोगी मार्गों में लगाने के बदले सारी जनता की भलाई के कामों में उन्हें लगा सकता है। इस प्रकार लोगों की उत्पादन-शक्ति और उत्साह सारी जनता की समृद्धि के रचनात्मक कामों में लगाया जा सकता है।

इस नीति का एक परिणाम यह होगा कि देश के गरीब लोग किसी आक्रमणकारी का सामना करने के लिए अधिक उत्सुक रहेंगे। शस्त्रीकरण के कार्यक्रम के कारण उनकी राष्ट्रीय सरकार उनकी गरीबी को बढ़ायेगी। उस हालत में किसी आक्रमणकारी का सामना करने का उत्साह नहीं कम रहेगा।

(२) जब कोई राष्ट्र सैनिक शक्ति का भरोसा नहीं करता, तो उसकी भीतरी व्यवस्था में एक तन्त्र की उन्नति और विकास के लिए अधिक अवसर रहता है। लोकतन्त्र का उल्लंघन, अनियंत्रित अधिनायकवाद और युद्ध की सशस्त्र तैयारी में बहुत गहरा संबंध है। जिस राष्ट्र ने लोकसत्ता की शक्ति और आत्मनिर्भरता का अनुभव किया है, वह राष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता के संरक्षण के लिए बलिदान करने को उस राष्ट्र की अपेक्षा अधिक तत्पर रहेगा, जिस राष्ट्र में भीतरी स्वतन्त्रता कुचली गयी हो।

(३) जब कोई राष्ट्र सैनिक शक्ति पर आधार नहीं रखता और उसके बदले सक्रिय अहिंसक प्रतिकार की पद्धति का प्रयोग करता है, तब आक्रमणकारी या अत्याचारी दुनिया के सामने और उसके अपने देशवासियों के सामने भी एक शांति-परायण और निःशस्त्र जनता पर पाशविक हिंसा का प्रयोग करने वाले अत्याचारी के रूप में प्रकट होगा। उसके लिए यह परिस्थिति सब तरह से प्रतिकूल होगी। शासन का वास्तविक रूप दुनिया के सामने स्पष्ट हो जाता है। इसके तीन मानसिक परिणाम होते हैं—निःशस्त्र राष्ट्र के लोग आक्रमणकारी के खिलाफ एक हो जाते हैं। अहिंसक प्रतिकार का प्रयोग करने वाले आक्रांत और पीड़ित देश के पक्ष में सारे संसार का लोकमत खड़ा हो जाता है। आक्रमणकारी राष्ट्र के निवासियों का समर्थन और सहानुभूति प्राप्त करने का सुयोग बहुत अधिक होता है, क्योंकि आक्रमणकारी राज्य आत्म-संरक्षण या किसी संकट का सामना करने का बहाना नहीं कर सकता।

जब कोई राष्ट्र शस्त्र-शक्ति पर निर्भर नहीं रहता, तो वह स्वतंत्रता के संग्राम में अधिक आत्म-निर्भर हो जाता है। जब वह हिंसा और शस्त्रों पर निर्भर रहता है, तो शस्त्रसामग्री समाप्त हो जाने पर उसका प्रतिकार ठप्प हो जाता है। यदि उसके पास काफी तादाद में शस्त्रास्त्र हो, तो भी हर हालत में एक बलवान राज्य के शस्त्रास्त्र अधिक भारी होंगे और लगभग अनगिनत होंगे।

लेकिन जब लोग शस्त्रों पर आधार नहीं रखते, तो प्रतिपक्षी उनके हथियार छीन कर या युद्ध-सामग्री के साधन नष्ट कर उनके प्रतिकार को तोड़ नहीं सकता; क्योंकि लोगों को बन्दूक, बारूद या बमों की जरूरत ही नहीं रहती।

असल में उनकी शक्ति के सारे स्रोत—उनके हृदय की शक्ति, उनकी निर्भयता और अन्याय के प्रतिकार के लिए अहिंसक उपायों का प्रयोग करने की उनकी क्षमता—भीतरी होती है।

(४) असहयोग, सविनय कानून-भंग, बहिष्कार, हड़ताल, सामुदायिक शांतिमय अवज्ञा, जुलूस, शांतियात्राएँ और इसी तरह के अहिंसक विरोधों की योग्यता प्राप्त करना भौतिक शस्त्रास्त्रों की कम या अधिक तादाद पर निर्भर नहीं है।

(५) जब कोई राष्ट्र सैनिक शक्ति पर निर्भर नहीं रहता, तो उस राष्ट्र के सभी लोग—बूढ़े और जवान, स्त्री और पुरुष—संघर्ष में सक्रिय भाग ले सकते हैं।

इस प्रकार सारी जनता की समस्त मानवीय शक्ति स्वतंत्रता के संग्राम के लिए उपलब्ध हो जाती है। उम्र, स्त्री-पुरुष-भेद आदि के कारण सक्रिय संघर्ष से किसीको अलग नहीं रखा जाता।

स्वेज़ का संदेश

स्वेज़ का संकट इस वस्तुस्थिति की याद दिलाता है कि जिन समस्याओं का परिणाम संघर्ष में होता है, उनका हल युद्ध से नहीं हो सकता। वह इस सत्य की भी याद दिलाता है कि जब शस्त्र-प्रयोग छोड़ दिया जायगा, तभी आपस की बातचीत से सबके हित में झगड़े का फैसला करने के लिए मौका मिलेगा। यह वह संदेश है, जिसकी घोषणा हमको लगातार करते रहना चाहिए—सिर्फ संकट के अवसर पर नहीं, बल्कि हफ़्ते-दर-हफ़्ते और साल-दर-साल।

—स्टुअर्ट मॉरिस,
मंत्री, पीस-प्लेज-यूनियन

www.vinoba.in

(६) जब कोई राष्ट्र सैनिक शक्ति पर निर्भर नहीं करता और साथ-साथ अत्याचारी, आक्रमण सहन भी नहीं कर सकता, बल्कि सारे उपलब्ध अहिंसक उपायों से उसका प्रतिकार करता है, तो वह राष्ट्र और वह जनता अपनी स्वतंत्रता के संग्राम के द्वारा एक अमूल्य नैतिक शक्ति उत्पन्न करती है।

उस नैतिक शक्ति का परिणाम सभी पर होगा, जिसमें उस राष्ट्र का प्रतिपक्षी भी शामिल है। जब कोई राष्ट्र अपने आक्रमणकारी की सतह पर नहीं उतरता और स्वतंत्र रहने का निश्चय कर लेता है तथा जो लोग हिंसा का आश्रय करते हैं, उनके बराबर बलिदान करने को तत्पर रहता है, तो उसके शस्त्रागार में दुनिया का सबसे अमोघ अस्त्र होता है। वह अस्त्र है—नैतिक बल, जिसे कोई नहीं छीन सकता।

(७) जब कोई राष्ट्र सैनिक शक्ति पर निर्भर नहीं रहता और निःशस्त्र प्रतिकार का आश्रय करता है, तो उस संघर्ष के बाद जो समाज और स्वतन्त्रता कायम रहेगी, वह सफल हिंसक युद्ध के बाद कायम रहने वाली स्वतन्त्रता और समाज-रचना से कहीं अधिक श्रेष्ठ होगी।

अहिंसा से लोगों में और देश में अंतर्गत लोकसत्ता का विकास होता है, ठीक उसी तरह, जैसे की हिंसा का परिणाम लोकसत्ता के दमन में होता है। अत्याचार के विरोध में जो अहिंसक संघर्ष होता है, उसमें प्रतिक्रांतिवादी फायदा उठा सकें, यह बहुत कम संभवनीय होता है। लेकिन हिंसक संघर्ष में इस तरह का फायदा उठाना उनके लिए आसान होता है।

इसका कारण यह है कि संघर्ष की दोनों पद्धतियों में मूलभूत अंतर है। हिंसक लड़ाई में ज्यों-ज्यों लड़ाई की प्रगति होती है, त्यों-त्यों सत्ता और नेतृत्व आम तौर पर अधिकाधिक केंद्रित होते जाते हैं, किन्तु अहिंसक संघर्ष में ऐसा नहीं होता। शुरू-शुरू में उसमें मजबूत नेतृत्व और केंद्रीभूत सत्ता होती है, जिसका स्वीकार लोग स्वयं-प्रेरणा से कर लेते हैं। लेकिन ज्यों-ज्यों संघर्ष की प्रगति होती है, त्यों-त्यों सत्ता और नियंत्रण का विकेंद्रीकरण होता जाता है।

(८) जब कोई राष्ट्र सैनिक शक्ति पर आधार नहीं रखता और अहिंसक प्रतिकार का प्रयोग करता है, तो वहाँ के लोग स्वतंत्रता के अस्त्रों से सुसज्जित होकर उनके उपयोग के लिए शिक्षित हो जाते हैं। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध अहिंसा से लड़ना वे सीख लेते हैं।

अहिंसक प्रतिकार का हर एक उदाहरण दूसरे देशों के लिए, जो कि अत्याचार का मुकाबला कर रहे हों या जिन्हें अत्याचार का खतरा हो, एक नमूना बन जाता है। हिंसक प्रतिकार में लगे हुए उत्पीड़ित लोगों को शस्त्रास्त्रों से भरा हुआ एक जहाज और युद्ध-कला में विशारद लोग अगर मदद पहुँचाने आ जायें, तो उन्हें जितना लाभ होगा, उससे अधिक लाभ इस अहिंसक पद्धति से होता है, क्योंकि इस पद्धति में तमाम लोगों को नैतिक और अहिंसक आयुध मिल जाते हैं और उनका उपयोग भी सिखाया जाता है।

इस प्रकार किसी भी राष्ट्र का स्वतंत्रता के लिए अहिंसक संग्राम सभी की स्वतंत्रता में सहायक होता है और शांति, न्याय तथा स्वतंत्रता के संघर्ष में अहिंसा का अधिकाधिक उपयोग करने की दिशा में एक अगला कदम साबित होता है।

हम हंगरी के लिए शोक प्रकट करते हैं, परंतु साथ-साथ यह भी जरूरी है कि हंगरी के वीरतापूर्ण और शोकपूर्ण संघर्ष से हम सबक सीखें।

('पीस-न्यूज' लन्दन, १६-११-५६ से)

साहसपूर्वक अहिंसक बनना होगा

एक बात निश्चित है कि हथियारोंके लिए यह बेतहाशा होड़ अगर जारी रही, तो उसका नतीजा एक ऐसे हत्याकाण्ड में होगा, जैसा कि आज तक इतिहास में कभी नहीं हुआ। अगर कोई विजेता बचा रहा, तो जो राष्ट्र उसमें से विजयी होकर निकलेगा, उसके लिए विजय ही जीवित मृत्यु होगी।

हमारे सिर पर लटकने वाले इस सत्यानाश से बचने का दूसरा कोई उपाय नहीं है, सिवाय इसके कि हम हिम्मत के साथ और बिना शर्त अहिंसक पद्धति का उसके सारे दिव्य फलितार्थों के साथ स्वीकार करें।

लोकसत्ता और हिंसा, दोनों साथ-साथ नहीं चल सकती।

आज जो राज्य केवल नाम मात्र लोकतांत्रिक है, उन्हें या तो खुल्लमखुल्ला अधिनायकवादी बनना होगा या फिर, अगर वे वास्तव में लोकतान्त्रिक बनना चाहें, तो साहसपूर्वक अहिंसक बनना होगा।

यह कहना कि अहिंसा का आचरण केवल व्यक्ति ही कर सकते हैं और राष्ट्र, जो कि व्यक्तियों के ही बने होते हैं, कभी नहीं कर सकते हैं, निपट नास्तिकता है।

(१२ नवंबर १९३८) —महात्मा गांधी

केर हार्डी और महात्मा गांधी

सन् १९१२ में, जाड़े के मौसम में, एक रात को मैं लंदन के 'ब्राउनिंग हॉल' में केर हार्डी का भाषण सुनने गया। श्रम-सप्ताह के उपलक्ष्य में वह भाषण हो रहा था। संयोग से मेरे साथ जिनोवा शहर के दो तरुण थे। वे इटली से आये हुए थे। उन्होंने जब श्रम और धर्म, इन दो शब्दों का समन्वय देखा, तो वे अवाक् रह गये। कहने लगे, "शेखचिल्लीपन है!"

मैं इस समुच्चय के लिए अधिक तैयार था। मेरे लिए वह भाषण जीवन का सबसे उदात्त आध्यात्मिक अनुभव था और मैंने अपने कई पुस्तकों में यह कहा भी है। हार्डी के दिव्य-स्फूर्त शब्द ये थे:

> "यदि मैं एक नौजवान होता और जिंदगी का रास्ता फिर से चुन सकता, तो मैं राजनीति के इस निर्जीव कीचड़ से और गुत्थियों से, पार्लमेंट की ढकोसलाबाजी से भाग खड़ा होता और पागल की तरह नाज़रेथ के उस बढ़ई के पीछे-ईसा मसीह के पीछे-दौड़ता और पुकार-पुकार कर दुनिया को उसका पैगाम सुनाता कि अकेली आत्मा का उद्धार नहीं हो सकता।"

भाषण के बाद मैंने केर हार्डी को अपना परिचय दिया और उनसे कहा कि मैं एक इटालियन लेखक हूँ। उनको मैंने यह जानकारी दी कि इटली में जो संघटित समाजवाद है, उसको धार्मिक भावना और समाज-सुधार के सम्बन्ध के विषय में कोई रुचि नहीं है।

मैं भी उस पक्ष का सदस्य हूँ, ऐसा मान कर हार्डी ने कहा—"अरे, तुम अभी बहुत छोटे हो। मानवीय मूल्यों की तह तक तुमने अभी गहरी डुबकी नहीं लगायी है। तुमको अनुभव से सीखना पड़ेगा। तुम सीखोगे।"

मैं इतना ही और कह देना चाहता हूँ कि इंग्लैंड में मैंने जो दिन बिताये, उनके स्मृतिचिह्नों की जो निधि मेरे पास है, उन सबमें केर हार्डी और महात्मा गांधी के स्मृति-चिह्न मेरे हृदय को सबसे अधिक प्रिय हैं। बाद में मैंने सुना कि जौरेज़ की तरह हार्डी भी १९१४ के युद्ध में मारे गये।

('पीस न्यूज' से) —प्रो० जिवोवान्नी पीओली,
मिलान (इटली)

मैं कुछ समझ नहीं सका!

जब मैं छोटा था, तो रविवार के स्कूलों में हमें ईसा मसीह और दूसरे पैगंबरों की कहानी पढ़ायी जाती थी। मुझे याद है कि जब मैं आठ साल का था, तो एक तरुण शिक्षिका हमको दस आदेशों के बारे में बतला रही थीं:

"तुम किसीकी जान नहीं लोगे।"

मेरी बगल में बैठी हुई एक छोटी-सी लड़की बोल उठी, "लेकिन—क्या ईसाई लोग युद्ध में भाग नहीं लेते?"

शिक्षिका ने कहा—"हाँ, लेते तो हैं, लेकिन वह अपवाद है।"

मैं कुछ समझ नहीं सका!

मेरे माता-पिता शांतिवादी तो नहीं थे, फिर भी वे यह नहीं चाहते थे कि अमेरिका युद्ध करे। लेकिन जब युद्ध छिड़ गया, तो उन्होंने मुझसे कहा, "युद्ध के खिलाफ कुछ न कहो!"

मैं कोई तेरह साल का रहा हूँगा, फिर भी मैं कुछ समझ नहीं सका!

www.vinoba.in

मैं हर रविवार को बंधुत्व का उपदेश सुनता था। लेकिन हमारे शहर के नीग्रो लोग एक अलग गिरजे में जाते थे और सिनेमा में एक अलग छज्जे में, बाल्कनी में बैठते थे।

मैं कुछ समझ नहीं सका!

और जब मैं अठारह साल का हुआ, तो मुझे यह बात कुछ अजीब-सी लगी कि लोग हर रोज़ ज्यादा पैसा कमाने के पीछे पड़े हैं और जब कि कुछ लोगों को काम ही न मिलता हो, दूसरों को मुनाफे की फिक्र हो। हमको सिखाया तो यह गया था कि हम सबको एक-दूसरे की मदद करनी चाहिए।

मैं कुछ समझ नहीं सका!

मैंने युद्ध के चित्रपट देखे। उनमें मैंने जापानी सिपाहियों को धधकते हुए सीरे से जीते-जी जलाये जाते हुए देखा। देखने वालों में से कुछ लोगों ने तालियाँ बजायीं, मैंने नहीं बजायीं। मुझे याद आ रहा था—"अपने दुश्मनों को प्यार करो।"

मैं कुछ समझ नहीं सका!

अगले साल मैं विश्वविद्यालय में गया और अनिवार्य सैनिक-सेवा के सुरक्षित सेनाधिकारी-प्रशिक्षण-पथक में भरती कराया गया। हमको यह शिक्षण दिया गया कि लड़ाई कैसे की जाती है और एक अचूक यन्त्र की तरह कदम मिलाते हुए किस तरह चला जाता है। लेकिन हम तो कोई यन्त्र नहीं थे!

मैं उन्नीस साल का था, फिर भी मैं कुछ नहीं समझ सका!

इसके बाद दो साल तक ऐसी कई रातें बीतीं कि मैं सो भी नहीं सका। ऐसे कई दिन एवं रातें आयीं, जब मुझे लगा कि भीतर से मेरा पुरज़ा-पुरज़ा उखड़ रहा है। धीरे-धीरे एक-एक उत्तर बाहर आने लगा। नतीजा यह हुआ कि अनिवार्य सैनिक सेवा के खिलाफ मैंने सिद्धान्त की बुनियाद पर विरोध किया। मुझे कैद की सजा हुई।

हमारी दुनिया अपनी निष्ठाओं के बीच विदीर्ण हो रही है। वह एक ही समय दो तरह के आदर्शों और विचारों में विश्वास करती है, इसीलिए दुनिया इतनी मुसीबत में है।

जब हम यह कहते हैं कि अच्छे उद्देश्यों के लिए गलत और अन्यायपूर्ण तरीके जरूरी हैं, तो हम गलती करते हैं। युद्ध से यथार्थ शान्ति नहीं आ सकती, द्वेष से प्रेम नहीं आ सकता, अत्याचार से स्वतंत्रता नहीं आ सकती।

लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि अधिकांश दुनिया को इसका पता ही नहीं है। इसीलिए राजनीतिज्ञ एवं सरकारें ऐसी बातें करती हैं, जिन्हें हम समझ नहीं सकते।

जो निष्ठा हमको सत् और असत् के बारे में अपना विश्वास बदलने को बाध्य करती है, वह निष्ठा छिछली है। एक ऐसी निष्ठा की जरूरत है, जो इस उपद्रवग्रस्त दुनिया में हमको सुनिश्चित प्रत्यय दे।

यदि हम अपनी सामाजिक जिम्मेवारियाँ पूरी करने के लिए नैतिक सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करें और तात्कालिक फायदों के लिए कोई गिरोह जो निर्णय करता है, उसके अनुसार आचरण करना छोड़ दें, तो हमारा आचरण अधिक निर्दोष होगा और हमारा माथा उन्नत रहेगा।

जो एक नयी दुनिया की बात करते हैं, लेकिन पुरानी दुनिया की हिंसा से काम लेते हैं, वे नयी दुनिया कभी नहीं बना सकेंगे।

अमेरिका, भारत, अफ्रिका, बरतानिया और संसार के दूसरे कई देशों में ऐसे तरुण हैं, जिन्होंने वीरतापूर्ण और शान्तिमय उपायों से एक नयी शान्तिमय और न्यायपूर्ण दुनिया का निर्माण करने की प्रतिज्ञा कर ली है। यही भविष्य की राजनीति है, यही शाश्वत राजनीति है।

एक रुग्ण सभ्यता के खोखले शब्दों को स्वीकार कर लेने मात्र से किसी को भीतरी प्रत्यय प्राप्त नहीं हो सकता।

आज भी ऐसा बहुत हैं, जो हम नहीं जानते। लेकिन हम, जो कि शान्ति के इस मार्ग में विश्वास करते हैं, यह मानते हैं कि हम अपने रास्ते पर हैं।

('पीस न्यूज', ३१-८-'५६ से) —जिनीशार्प (अमेरिका)

जब लोग लड़ने से इन्कार करेंगे!

शान्ति-संघ के मेरे एक पुराने मित्र ने यह कह कर मेरी भर्त्सना की कि शांतिवादियों के पास ऐसी कोई निश्चित लिखित रूपरेखा नहीं है, जिसके अनुसार वे उन समस्याओं का समाधान उपस्थित कर सकें, जिनका समाधान युद्ध से होता है। मुझे यह सुन कर कोई खेद नहीं हुआ।

शान्तिवाद एक सिद्धान्त है। यह कोई ऐसी प्रक्रिया नहीं है, जिससे राजनेताओं को उनके मन्तव्यों और नीतियों के परिणामों से बचाने का चमत्कार किया जा सके।

हम देखते हैं कि नीति और योजना की रूपरेखा के सम्बन्ध में प्रायः लोगों के मन में बड़ा भ्रम हो जाया करता है। नीति एक सिद्धान्त पर आधार रखती है और उस सिद्धान्त को कार्यान्वित करने के लिए तफसीलवार रूपरेखा होती है। यदि नीति शांतिवादी है—जैसे एकपक्षीय शस्त्र-त्याग की-तो स्पष्ट है कि युद्ध-विरोधियों को ऐसी योजना की रूपरेखा बनानी होगी, जिससे तलवारों से हल के फाल बनाये जा सके और संभाव्य आक्रमणकारियों का सामना अपने तरीके से किया जा सके। लेकिन अगर नीति युद्ध की है, तो शांतिवादियों को मुख्य रूप से ऐसी नीति का जम कर समर्थन और प्रचार करना चाहिए, जो उस पुरानी नीति की जगह लेगी, जिसके कारण ऐसी परिस्थिति पैदा हुई कि समस्या का समाधान का एकमात्र उपाय युद्ध ही माना गया।

आम तौर से शान्तिवादियों से यह प्रश्न किया जाता है कि १९३९ का महायुद्ध टालने के लिए वे क्या करते हैं? ये प्रश्नकर्ता हमसे बिलकुल गढ़ी छिली हुई मुडौल योजना चाहते हैं; जब कि असलियत यह है कि हिटलर और उसका शासन प्रथम जागतिक युद्ध का प्रत्यक्ष परिणाम था! उसके फलस्वरूप उसने प्रतिशोध की नीति अख्तियार की है और सत्तावाद की पैंतरेबाजी में वह उतर आया। यदि लोग ऐसी नीतियों का समर्थन करें और इच्छा-अनिच्छापूर्वक लोग ऐसा करते भी हैं, तो उन्हें ऐसे अपरिहार्य परिणाम भुगतने पड़ते हैं, जिनसे निस्तार का उपाय या कोई योजना नहीं हो सकती।

१९३९ में शान्तिवादी इतना ही कर सकते थे कि वे लड़ाई में भाग लेने से इन्कार करते। यह बिलकुल निश्चित है कि वे ऐसी कोई योजना तत्काल नहीं उपस्थित कर सकते थे, जिससे संकट से रक्षण हो सकता। ठीक इसी प्रकार स्वेज़-संकट के समय भी शान्तिवादी एक ही नीति का प्रतिपादन कर सकते थे कि युद्ध न हो। नासिर ने यह आश्चर्यजनक रूप से और शायद अनपेक्षित रूप से उलटफेर किया। इसके बाद शांतिवाद प्रायः पूर्ण रूप से उपयुक्त हो गया, क्योंकि सर्वसाधारण जनता भी, जो कि अक्सर हर बात को चुपचाप मान लेती है, कहने लगी कि "युद्ध नहीं चाहिए।"

क्योंकि सेनाओं की हलचलें, सुझावों, घोषणाओं और सरकारी प्रतिनिधियों की धमकियों के बावजूद भी अन्त में प्रधान मंत्री को मिसर देश में भेजी हुई सेनाओं के नेतृत्व से कदम पीछे लेना पड़ा। सिर्फ इसी वजह से कि युद्ध के खिलाफ लोकमत प्रबल हो उठा। जनता ने कोई योजना उपस्थित नहीं की। इसके विपरीत उसने यही मत व्यक्त किया कि समस्या के समाधान का मार्ग युद्ध है ही नहीं, इसलिए वह युद्ध का समर्थन नहीं कर सकती। इसका परिणाम यह हुआ कि अब इजिप्त में युद्ध होना बहुत सम्भवनीय नहीं मालूम होता, जब कि कुछ ही हफ्ते पहले उस युद्ध से अधिक सम्भवनीय कुछ नहीं मालूम होता था।

मजदूर-दल की ओर से काफी देर के बाद यह दबाव डाला गया कि राष्ट्रसंघ की मध्यस्थता से समस्या का समाधान कराया जाय। उसको युद्ध रोकने का कोई श्रेय नहीं। वस्तुतः युद्ध ब्रिटेन के साधारण नागरिक की व्यावहारिक बुद्धिमानी के कारण रुका। ब्रिटेन का हर सामान्य नागरिक, प्रत्येक स्त्री-पुरुष बिना किसी प्रकार की निश्चित योजना बनाये, यह कह कर उठ खड़ा हुआ कि वह किसी भी हालत में युद्ध नहीं चाहता।

शांतिवादी न सन् १९३९ में ऐसा कर सकते थे और न आज भी वैसा कर सकते हैं कि जादू की छड़ी से शासकों को शान्तिवादियों में बदल दें। मजदूर-दल अब शान्तिवादी नहीं रह गया है। उसके नेता श्री गेटस्किल सिर्फ इतना ही कहते कि वे ऐसे किसी युद्ध का समर्थन नहीं कर सकते, जिसको राष्ट्रसंघ का आशीर्वाद प्राप्त न हो। इसका शांतिवाद के साथ कोई संबंध नहीं है।

www.vinoba.in

जब तक शांतिवादी अपनी मूलभूत नीति के रूप में शान्तिवाद का प्रतिपादन करने के अपने मुख्य कार्य से अपने आपको विचलित होने देंगे और युद्धवादियों को उनकी करतूतों के तर्कप्राप्त परिणामों से बचने के रास्ते बतलाने का प्रयत्न करेंगे, तब तक क्रियाशक्ति और बल का अपव्यय ही होगा।

शायद इससे अधिक अनुकूल समय पहले कभी नहीं था, क्योंकि लोकमत की आवाज इतनी साफ हमेशा नहीं सुनायी देती।

केर हार्डी एक सामान्य श्रमिक थे और वे सीधी-सादी भाषा में बोलते थे, जिससे कि जिन लोगों के सामने वे बोलते थे, वे उनकी बात को समझे बिना न रहें। उन्होंने शान्तिवाद की बड़ी सरल व्याख्या की, जब कि उन्होंने यह कहा—"लोग जब लड़ने से इन्कार करेंगे, तो लड़ाइयाँ अपने आप बंद हो जायेंगी।"

(अंग्रेजी से साभार) —सिविल मॉरिसन

तमिलनाड़ की क्रांतियात्रा से—

(दामोदरदास मूदड़ा)

ता. २६ जनवरी '५७; वलंगिमन (तंजावर) पड़ाव

"शुभास्ते पंथानः सन्तु"—"जाओ यशस्वी बनो"—भूदान-यज्ञ के होता का आशीर्वाद लेकर तीन स्थानों के लिए तीन सेवक बिदा हुए—श्री काका अत्रे, श्री निर्मला बहन देशपांडे और श्री कुसुम देशपांडे। इन दोनों बहनों से तो भूदान-प्रेमी तथा साहित्योपासक भारतीय जनमन काफी परिचित है, क्योंकि गत चार वर्षों से दोनों ने अपनी सारी शक्तियों सहित बाबा के उद्‌गारों को जनता तक पहुँचाने का महत्त्वपूर्ण कार्य सफलतापूर्वक किया। विनोबा को इन दोनों कन्याओं के कारण भूदान-साहित्य-प्रकाशन में बड़ी मदद मिलती रही। श्री निर्मला बहन को महाराष्ट्र के सांस्कृतिक केन्द्र, औरंगाबाद जिले के लिए तथा श्री कुसुम बहन को चंद्रपुर याने चांदा जिले के लिए नियुक्त किया गया है। श्री काका अत्रे गत तीन वर्षों से सर्व-सेवा-संघ के गया स्थित कार्यालय के महत्त्वपूर्ण आधार-स्तंभ रहे हैं। नागरी टंकन-यन्त्र के निर्माता के तौर पर वे भारतवासियों के विशेष परिचित हैं। वानप्रस्थ जीवन के आदर्श का उत्तम दर्शन श्री अत्रे काका के व्यक्तित्व में दिखायी देता है। मराठवाड़ा का पश्चिमी जिला श्री काका के हिस्से में आया। मराठवाड़ा के पाँचों जिलों के बारे में बाबा सतत काफी चिंतित रहते थे। उन पाँचों में से अब चार जिलों का प्रबंध हो पाया है, इससे बाबा को भी कुछ संतोष नजर आया। उधर नागविदर्भ के आठ जिलों के बारे में वे निश्चिंत ही थे। श्री प्रो० बंग ने लिखा था कि चांदा का प्रबंध अब तक नहीं हो पाया है। इसलिए वहाँ कुसुम ताई को भेज दिया। महाराष्ट्र के शेष भाग में तो काम ठीक चल ही रहा है और बड़े-बड़े नेता लोग उधर ध्यान दे ही रहे हैं।

तालीम को मुक्त करना है

ता. २७ जनवरी, कुंभकोणम्

यहाँ तो बाबा करीब सवा घंटे तक बोले। इन दिनों इतना लंबा व्याख्यान अक्सर नहीं होता, पर यहाँ सरस्वती बहती ही रही। अखंड स्फूर्ति-गंगा में ही मानों सब डूबे रहे। कृष्ण और संदीपनी, वशिष्ट और दिलीप, सिकंदर और फकीर, यूक्लिड और राजा, आदि के अनेक दृष्टांत देकर षड्‌दर्शनों को जन्म देने वाली इस देश की तेजस्वी विद्या के उज्ज्वल अतीत का दर्शन कराया और रेजिमेंटशन, बेकारी और क्लैब्य को बढ़ाने वाली पुरुषार्थ-हीन आधुनिक शिक्षा का चित्र भी खड़ा कर दिया! उन्हींके शब्दों में व्याख्यान का सार कहना हो, तो ये सप्त सूत्र काफी हैं:

(१) आज की विद्या पैसे की दासी बन गयी है।
(२) आज की विद्या सत्ता की भी दासी बन गयी है।
(३) शिक्षक सारे नौकर बन गये हैं।
(४) गुरु-शिष्य-संबंध रह ही नहीं गया है।
(५) विद्यार्थियों के दिमागों का रेजिमेंटशन (एक ही ढाँचे में ढालने की प्रक्रिया) हो रही है।
(६) पुरानी मुक्ति-दायिनी विद्या को स्थान नहीं है।
(७) आम जनता का सर्वसामान्य विद्या-प्राप्ति का अवकाश खत्म हो गया है और केवल विशिष्टों की विद्या का प्रबंध हो पाता है, जिससे आम जनता में और पढ़े-लिखे लोगों में दीवार खड़ी हो गयी है।

यद्यपि विनोबाजी ने अनेकविधि विनोद-भरी उपमाएँ देकर लोगों के दिलों पर वर्तमान शिक्षा की विफलता अंकित करने की कोशिश की, पर उनके हृदय का दर्द ही विशेष रूप से सारे भाषण में प्रतिबिंबित हुआ! अभय और आश्वासन के स्थान पर जो विद्वान थे, वे आज भय-स्थान बन गये। वशिष्ट के सामने दिलीप को झुकने के बजाय दिलीप के सामने वशिष्ट के झुकने का समय आ गया। राजनीतिज्ञों के रूप में ये विद्वान दुनिया पर सत्ता चला रहे हैं! वैज्ञानिकों के रूप में वे दुनिया को विनाश के संकट में डाल रहे हैं। सारांश, जब से विद्या दासी बन गयी, तब से वह राक्षसी बन गयी! वीणा-पुस्तकधारिणी सरस्वती सत्ता-चरणपुजारिणी बन गयी। इसलिए विनोबाजी का आवाहन था कि सरस्वती को पुनः उसके देव-सिंहासन पर आरूढ़ करना है, तालीम को 'मुफ्त' नहीं, 'मुक्त' करना है—सरकारी पाशों से छुड़ाना है। कुंभकोणम् के विद्वानों से विनोबा ने आशा प्रकट की कि यदि वे जनशक्ति के निर्माण के लिए कुछ प्रयत्न करेंगे, तो विद्या को सत्ता और पैसे की गुलामी से मुक्त करने में सक्रिय सहयोग दे सकेंगे।

कुंभकोणम् में गुजराती—मारवाड़ी व्यापारियों के काफी घर हैं। स्त्रियाँ, बच्चे, सभी मिलने आये। संपत्तिदान के बारे में वे कुछ शंकाओं का समाधान चाहते थे। उनसे विनोबा ने कहा—"मुझे व्यापारियों को समझाने में पहले भी दिलचस्पी कम थी—अब भी कम है। बीच में एक अपील मैंने व्यापारियों के नाम प्रकाशित की थी।" दिलचस्पी कम होने का कारण भी बताया कि "व्यापारी बुद्धिमान हैं, उन्हें समझाने की कोशिश करना याने उनकी बुद्धि का अपमान है। इस आंदोलन का असर अगर उन पर नहीं होता है, तो इसका अर्थ यही है कि वे असर होने देना नहीं चाहते। अगर वे इधर ध्यान नहीं देते हैं, तो वे ध्यान देना नहीं चाहते! इसलिए उनके पीछे पड़ना या उन पर आक्रमण करना अहिंसा के विरुद्ध है। धर्म-बुद्धि उनके पास है ही। एक दिन उनके ध्यान में आ जावेगा कि अनेक छोटी-छोटी देवताओं के पीछे पड़ने के बजाय एक ही देवता के पीछे जाना काफी है, तो वे खुद आकर इस आरोहण से पथिक बनेंगे।"

पिछले कुछ रोज से श्री वल्लभस्वामी तो साथ थे ही, दो रोज पहले श्री सिद्धराजजी भी पदयात्रा में शरीक हुए। इस मंत्रीद्वय ने पलनी-सम्मेलन के बाद भारत के विभिन्न हिस्सों की यात्रा की है तथा कार्यकर्ताओं के उत्साह से प्रभावित हुए हैं। आंध्र, पंजाब तथा आसाम जैसे दो-तीन प्रांतों को छोड़ कर सभी प्रांतों में उत्साह से तन्त्रमुक्त और निधिमुक्त कार्य आरम्भ हो गया है। बाबा के पास के बढ़ते कार्य की दृष्टि से श्री वल्लभस्वामी अब अधिक समय उनकी पदयात्रा में ही रहेंगे। उनके रूप में सर्व-सेवा-संघ केन्द्रीय कार्यालय ही मानों साथ रहेगा, जिससे निर्णय लेने में तथा काम निबटाने में सुविधा होगी।

श्री आर्यनायकमूजी अभी यात्रा से लौटे। श्री दादा भाई नायक तथा श्री डोनाल्ड ग्रूम भी आये। गत आठ माह से ये दोनों मध्यप्रदेश की अखंड पदयात्रा कर रहे थे और बाबा की आज्ञा नहीं होती, तो हरगिज नहीं आते। श्री डोनाल्ड के शरीर का बहुत-सा वज़न पदयात्रा में घट गया था। बाबा ने उन्हें देखते ही पहले स्मितपूर्वक उनके इस खोये हुए वज़न की चर्चा की। अब, आजकल डोनाल्ड का स्वास्थ्य कुछ ठीक है। पदयात्रा में इन महानुभावों को खाने-पीने का कष्ट भी काफी उठाना पड़ा है। छत्तीसगढ़ में तो कितने ही रोज़ सिवा मोटे चावल के, और कुछ भी नहीं मिलता रहा है। कार्यकर्ताओं की इस आहारादि की तकलीफ का विनोबाजी के मन पर तो बोझ रहता ही है।

तिरुवारूर ग्राम तमिलनाड़ की तीन संगीत-मूर्तियों का जन्मस्थान है। श्री मुजुस्वामी दीक्षितर, शामाशास्त्री और सन्त त्यागराय; इस त्रिमूर्ति ने कर्नाटक संगीत की रूपरेखा बनायी और उसे उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचाया।

गाँव में बहुत पुराना सुन्दर मन्दिर है—'त्यागराज-भगवान्' का। द्वार पर विष्णु की मूर्ति है, जिसके हृदय पर 'त्यागराज' शंकर विराजमान हैं। बाबा ने कहा—'शिवस्य हृदये विष्णुः विष्णोः हृदये शिवम्'-प्रेम और अद्वैत की ऐसी भावना हुए बिना विश्वशान्ति की क्षमतावाला भूदान-आरोहण कैसे सफल होगा? मन्दिर में तमिलनाड़ के भक्तों की अनेक प्रतिमाएँ विराजमान हैं। भक्तराज सुन्दर की मूर्ति ठीक मन्दिर के महाद्वार के सामने है। मन्दिर के सत्ताईस खम्भों पर पाँच-पाँच दीपों की रोशनी का मन्द मनोहर प्रकाश है। कहीं-कहीं संगमरमर पर भक्तगाथा तथा शिवस्तोत्र लिखा हुआ है।

सबेरे श्री डोनाल्ड ग्रूम से बातें हुईं। उन्होंने कहा: "बाबा, शुरू में तो मेरे भी मन में यही था कि मुझे भारत में रह कर ही काम करना है। परन्तु अब मैं देखता हूँ कि भूदान के विचार को मैं इंग्लैंड में भी ले जा सकता हूँ और वहीं रह कर मुझे इस विचार का प्रचार करना चाहिए, क्योंकि वहाँ इसके लिए परिस्थिति अनुकूल बनती जा रही है। जो गलतियाँ वे लोग कर रहे हैं, उससे भूदान के लिए अनुकूलता निर्माण हो रही है।"

www.vinoba.in

बाबा ने डोनाल्ड भाई का उत्साह बढ़ाते हुए कहा :

"मेरे मन में भी ऐसा है कि यह काम केवल हिन्दुस्तान का नहीं है, दुनिया का है। अभी तो मैं सोचता हूँ कि हिन्दुस्तान की क्रांति का कार्य पहले हो जाय। चाहे उसमें एक-दो बरस कमवेशी लगें। यहाँ का मसला पूरा होजाय, लोग प्रेम से जमीन का मसला हल कर लें, तो फिर दुनिया की ओर ध्यान देने का मन होता है।" ध्यान रहे कि सर्वोदय-विचार का आकर्षण विदेशों में दिन-बदिन बढ़ता ही जा रहा है। अभी यूनेस्को क दिल्ली-सभा में श्री विमला बहन का जो भाषण हुआ, उसके बाद उन्हें पाकिस्तान, सीलोन, जापान, इन्डोनेशिया आदि देशों से निमंत्रण मिले थे। अभी जापान के मजदूर-नेता बाबा से मिले। उन्होंने भी आग्रहपूर्वक कुछ लोगों को जापान भेजने को कहा। उस समय तंजावर जिले की यात्रा चल रही थी और आगे तंजावर होकर श्रीरंगम् की ओर जाना था। उन्होंने जापानी मित्रों के निमंत्रण पर कहा भी कि अब तो उसी दिशा में जा रहे हैं! जापानी गुरु ने तो बिदा लेने से पूर्व बाबा से अपनी ओर से निवेदन भी किया कि "हम लोग दो साल तक आपके आगमन के लिए अनुकूल वातावरण बनावेंगे और फिर, बाबा, मैं आऊँगा और आपको जापान ले जाऊँगा।" जापानी गुरु ने बहुत संकोच से रुक-रुक कर यह सब कहा, परंतु बड़े आत्मविश्वास से कहा, मानो उनकी अंतरात्मा कह रही थी कि मैं बाबा को ले ही जाऊँगा!

लेकिन बाबा के मन में इस बारे में संदेह नहीं है कि जब तक भारत का काम पूरा नहीं होता, भारत के बाहर का विचार करना नहीं है। यहाँ तक कि वे बाहर के लोगों को संदेश देने में भी संकोच करते हैं।

भूदान और राजनीति

एक लोक-सेवक से बात हो रही थी। वे इससे पूर्व जिला-कॉंग्रेस के अध्यक्ष थे। अब उनके बारे में सुना गया था कि भीतर-भीतर वे राजनैतिक पक्ष से संबंध रख कर सलाह वगैरा देते हैं। बाबा ने पूछा तो कहा कि मेरा संबंध तो आता है, परंतु मैं अलग रहने की भी कोशिश करता हूँ। बाबा ने मृदुतापूर्वक किंतु दृढ़तापूर्वक कहा, "समुद्र नदी में नहीं जाता। नदी को ही समुद्र में आना होता है। अपने मित्रों से कहिये कि 'हम आपके चुनाव का विरोध नहीं करेंगे; पर उसमें किसी प्रकार हिस्सा भी नहीं लेंगे; बल्कि आपको ही जल्द से जल्द भूदान-यज्ञ में पूरी शक्ति से हिस्सा लेना है।"

फिर थोड़ी देर चुप रह कर उस सेवक की आँखों में अपनी आँखें गड़ा कर कहा, "इस समय अगर राजनीति से किंचित् भी संबंध रखेंगे, तो हमारे आंदोलन को खतरा है। हमें बिलकुल 'पद्मपत्र इवांभसा' रहना है। वरना प्रतिज्ञा का तो भंग होता ही है, आंदोलन को भी उससे धक्का पहुँचेगा।"

* * * *

"सत्-आवन" का संवत्सर शुरू हुआ और निधि-मुक्ति तथा तन्त्र-मुक्ति के निर्णय के बारे में जगह-जगह से अनुकूल प्रतिक्रियाएँ मालूम होने लगीं। जगह-जगह से सत्याग्रही लोकसेवकों के निष्ठा-पत्र प्राप्त होने लगे। कहीं-कहीं तो असेंब्ली और पार्लियामेण्ट में जाने वाले लोगों ने उधर का मोह छोड़ कर दृढ़तापूर्वक लोकसेवकत्व स्वीकार किया। मद्रास की श्रीमती अमृताराम सुब्रह्मण्यम्, ऐसी ही एक उल्लेखनीय मिसाल है। जगह-जगह भूदान में काम करने वाली बहनों पर धारा-सभाओं के लिए दबाव आया, पर बहुतों ने नम्रतापूर्वक, किन्तु दृढ़ता से अपने को उसमें से बचा लिया।

बाबा राघवदासजी ने तो 'घटाकाश' की ही उपमा देकर तन्त्र-मुक्ति के निर्णय की भूरि-भूरि प्रशंसा की। अनेक कार्यकर्ताओं की ओर से भी भाव-भरे पत्र प्राप्त होते रहे, किन्तु विनोबाजी अपनी ओर से कार्यकर्ताओं को सदा ही सावधान करते हैं। एक पत्र में उन्होंने लिखा, "हमारे कई कार्यकर्ता ऐसे हैं, जिन्होंने तन-मन लगा दिया है, पर यह निष्ठा तभी यश पायेगी, जब उसके साथ पूरी नम्रता होगी, याने अपने को केवल शून्य बनाने की दृष्टि होगी। सत्याग्रही हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया बहुत सूक्ष्म है और वह कुल दुनिया को अपने पेट में समा लेने वाली है। जन-हृदय में—जिसमें ऊँच-नीच, भले-बुरे, सभी लोग आ गये—प्रवेश पाना तभी शक्य होगा, जब अपने हृदय में हमने सबको स्थान दिया हो।"

१ फरवरी को प्रातः पाँच बजे कूच करने के कारण यात्रा "नक्षत्रों की छाया में" चल रही थी। बुध, शुक्र के तो आगे निकल गया था, परन्तु हमेशा की अपेक्षा आगे स्वामी सूर्य से भी कुछ विशेष ही दूर निकल चुका था। सत्-आवन के स्वागत की तैयारी करने के लिए इस प्रकार सेवकों को थोड़ी देर स्वामी से दूर भी होना पड़ता है। जिसे अपना स्वामी मान कर श्री दादाभाई नायक अब तक सेवा में जुटे हुए थे, उस महाकोशल प्रदेश की जनता से छुट्टी ले कर बुध की तरह थोड़ी देर के लिए खादीग्राम जा रहे थे। ऐसी ही आशा श्री सिद्धराजजी को हुई थी कि राजस्थान के अपने सेवाक्षेत्र से चित्त को हटा कर सर्व-सेवा-संघ के बढ़ते काम में वे एकाग्र हों। 'जय-विजय' की तरह ये दोनों शीघ्र खादीग्राम पहुँच भी गये। इस पर बाबा ने कहा, "मुझे इस निर्णय से बहुत सन्तोष हुआ है।" फिर त्रिशंकु की ओर इशारा करते हुए बोले, "दादा! इस सदर्न क्रॉस को भी देख लीजिये। बिलकुल ईसा का क्रॉस नजर आता है। खादीग्राम में यह इतना स्पष्ट और इतना ऊँचा नजर नहीं आवेगा।"

खादीग्राम से होने वाले आकाश-दर्शन में भले ही वह क्रॉस अब दिखायी न दे, परंतु दादाभाई और सिद्धराजजी के हृदयाकाश में तो वह हमेशा के लिए अंकित हो गया। नये त्याग की प्रेरणा पाकर ही दोनों ने बाबा से बिदा ली थी।

श्रीरंग पिल्लैकाडे नामक ग्रामदानी गाँव के लोग यहाँ मिलने आये थे। अन्य ग्रामदानी गाँवों से यह ग्राम भिन्न था। एक ही भाई की जमीन थी। उसने पूरी की पूरी दे दी। तंजावर में ग्रामदान सुन कर पहले तो विनोबाजी ने आश्चर्य प्रगट किया कि "समथिंग अनड्रेम्ट ऑफ!" फिर कहानी सुन कर ग्रामवासियों को कहा," आप लोग यह मत समझ कि आप सिर्फ पाने के ही अधिकारी हैं। अपने गाँव के विकास के लिए वर्ष में हर व्यक्ति अपने परिश्रम में से बारह रोज की आमदनी प्रदान करे।" लोगों ने यह सहर्ष स्वीकार किया। बिहार के सेनहा ग्राम का जिक्र करते हुए बाबा ने बताया कि कैसे दो वर्ष पहले वहाँ खाने को भी पूरा नहीं मिलता था और कैसे अब परिश्रम से इतना अनाज होता है कि खा भी नहीं सकते!

जिला-दान चाहिए!

करियापट्टिनम् ग्राम में बाबा ने कहा : "यहाँ के लोग धार्मिक हैं। लाखों एकड़ जमीन मंदिरों को, उस समय जिसे धर्म समझा उसके लिए, दे दी। इस समय जो धर्म समझेंगे, उसके लिए इस समय भी देंगे और दान तो 'तरी' जमीन का ही किया जाता है, जैसे ब्राह्मण को दक्षिणा देते हैं, तो भिगो कर ही देते हैं, क्योंकि पैसा सूखा होता है, और सूखी वस्तु दान में नहीं दी जाती! मदुरा के लोग तालुका-दान की बात करते हैं, पर तंजावर में तो मुझे पूरा ही जिला दान में चाहिए!" ढाई सौ कार्यकर्ता यहाँ के रचनात्मक केन्द्र में होकर भी भूदान के काम में विलंब होने का कारण है, कार्यकर्ताओं के जीवन में मूलभूत परिवर्तन का अभाव। इधर मदुरा, उधर महाराष्ट्र और ऊपर उत्कल-बिहार में जो काम हो रहा उसका असर है, तंजावर पर हुए बिना नहीं रहेगा और यह जिला भी ग्रामदानी जिला बन जावेगा, ऐसा विश्वास भी उन्होंने प्रकट किया।

'वेदारण्यम्' सरदार वेदरत्नम् पिल्ले का सेवा-क्षेत्र है, राजाजी के नमक सत्याग्रह का स्थान है। सत्याग्रह के जमाने में यहाँ सामाजिक बहिष्कार इतना जबर्दस्त हुआ कि सरकारी नौकरों को खाने-पीने की चीजें तो क्या, लेकिन नाई भी नहीं मिलता था। तब सारे पुलिस खादीधारी बन कर रहने लगे। एक नाई ऐसे ही खादीधारी पुलिस की आधी हजामत कर चुका था कि किसी तरह उसका पता हजाम को लग गया और उसने उसकी हजामत ही छोड़ दी! कलेक्टर के पास वह "अर्धनारी" पुलिस शिकायत लेकर गया, तो हजाम की पेशी हुई। हजाम ने कहा, "हुजूर, आप हजामत की मेरी संदूक मुझसे ले सकते हैं, परंतु मैं हजामत नहीं कर सकता! यह पाप मुझसे नहीं बन सकता।" कलेक्टर ने उसे छह माह की कड़ी सजा का पुरस्कार दिया!

ऐसे कई किस्से वेदरत्नमूजी रास्ते भर सुनाते रहे। "आपने आज सारे रास्ते भर हिंदी में इतनी अच्छी और जितनी देर बातें की हैं, उसके लिए आपको परम-वीर-चक्र मिलना चाहिये।"—बाबा ने उनकी हिंदी का गौरव करते हुए कहा। वेदारण्यम् में सरदार वेदरत्नम् ने गत बारह वर्षों से एक कन्या-गुरुकुल भी शुरू किया है, जिसमें छात्राएँ, शिक्षिकाएँ, शिक्षक और उनका परिवार मिल कर करीब चार सौ लोग रहते हैं, जो वर्धा के महिलाश्रम की याद दिलाता है। समुद्र का कभी-कभी प्रकोप इतना भयानक होता है कि सैंकड़ों घर तूफान में डूब जाते हैं। इन घरों को बसाने में रामकृष्ण मिशन द्वारा भी सराहनीय काम हो रहा है।

शाम को संस्था के संबंध में अपनी भावना प्रगट करते हुए विनोबा ने कहा, "अहिंसक और मातृ-प्रधान समाज-रचना करने का महान् कार्य बहनों को करना है। न सिर्फ नयी रचना उन्हें करनी है, पुरुषों के हाथ बिगाड़ी हुई परिस्थिति को भी सुधारना है। वेदरत्नम् जैसे भगवत्-भक्त के मार्गदर्शन में ग्रामदान की प्रक्रिया द्वारा इस महान् कार्य का यहाँ दर्शन होगा! सार इलाके से तीन सौ शिक्षक

www.vinoba.in

मार्गदर्शन लेने आये थे। उनसे कहा," आपको अपनी हैसियत पहचानना चाहिए, जीवन की समस्याओं को समझना चाहिए और टूटी हुई ग्राम-संस्था की पुनः प्रतिष्ठापना की प्रतिज्ञा करनी चाहिए।

संस्था में यद्यपि सारा काम नयी तालीम के आधार पर चलता है, अभी अध्यापकों के मन नयी तालीम के बारे में पूरी तरह निःशंक नहीं हो पाये थे। विज्ञान, इंजिनियरिंग आदि, और खास करके राजनीति आदि क्षेत्रों में नयी तालीम का तेज कैसे पड़ेगा, इस बारे में प्रश्नों का जवाब देते हुए विनोबा ने कहा, "पुरानी समाज-रचना में नयी तालीम नहीं चल सकती। इसलिए रचना ही बदलने का काम हमने उठा लिया है और ग्रामदान द्वारा वह हो रहा है। जो दो हजार गाँव ग्रामदान में मिले हैं, वहाँ कौनसी तालीम चलेगी? परंतु अभी अनेक रचनात्मक कार्यकर्ता ऐसे मूढ बन बैठे हैं कि भूदान को अनेकविध रचना-कार्य की एक शाखा ही मानते हैं और सोचते हैं कि हमारा काम भी चलेगा और बाबा का भी ! परंतु यह काम शाखा-रूप नहीं है। यह तो बुनियाद है, सारे रचनात्मक काम की। इसकी सिद्धि में और सब काम की सिद्धि है।

रास्ते में वायमीडु के नचिकेता-निवास नामक अत्यन्त पुरातन मंदिर को देखना था। मंदिर का नाम बहुत अच्छा लगा। नचिकेता के साथ श्वेतकेतु की भी मूर्ति है। बाबा को ये दोनों मूर्तियाँ और उनका आदर्श प्रिय है। "यहाँ उपनिषद्-सार ही रख दिया गया है," कह कर उन्होंने मंदिर का गौरव किया। "रामनाथन्" नाम से एक शिव-लिंग भी यहाँ पर है, जिसकी स्थापना रामचन्द्रजी के हाथों हुई थी। रावण-वध के बाद ब्रह्म-हत्या के पातक से मुक्त होने के लिए यहाँ यह शिव-पूजन हुआ था। आदि सेतु का मार्ग यहीं से बना था। परंतु चूँकि लंका के पिछले द्वार पर वह सेतु जाकर पहुँचता था, तो राम के इंजिनियरों ने वह प्रोजेक्ट बदल कर मुख्य द्वार पर पहुँचने के लिए दूसरा सेतु धनुष-कोटी से बाँधा, ऐसी कहानी है। मंदिर की विशेषता यह है कि जब तूफान में सारा शहर जलमय हो जाता है, तो सब लोगों के लिए एकमात्र आश्रय-स्थान यह मंदिर ही रह जाता है।

४ फरवरी को मदुराई जिले से तार आया कि तीन ग्रामदान मिले। रात को जब सब लोग सो गये, तो तब भी तार आया कि पाँच ग्रामदान मिले हैं। पिछले हफ्ते में इस प्रकार चार बार तार द्वारा ग्रामदान की खबरें मिलती रही हैं। इनमें एक तार तो बारह ग्रामदान का है।

ग्रामदान-आंदोलन के बढ़ते चरण :

गुजरात में ग्रामदान का संकल्प

गुजरात के दूसरा ग्रामदानी गाँव-खांडणीया-का क्षेत्र ९२५ बीघे का है और २२ परिवार रहते हैं। श्री हरिवल्लभ परीख ने क्रांतिवर्ष '५७ में १०१ ग्रामदान प्राप्त करने का संकल्प किया। यह उनका दूसरा ग्रामदान है।

कर्नाटक में ग्रामदान

ता० १२ फरवरी को कारवार जिले के अंकोला तालुका में ब्रह्मूर नामक गाँव स्थानिक कार्यकर्ता और निवासियों की प्रेरणा से ग्रामदान में मिला है। इस तरह १२ फरवरी के शुभ अवसर पर कर्नाटक में ग्रामदान की बुनियाद डाली गयी है। यह ग्रामदानी गाँव घने जंगल में बसा हुआ ११६ एकड़ का क्षेत्र है। सभी जातियों के १७ परिवार रहते हैं।

संवाद-सूचनाएँ :

सर्वोदय-विचार-शिविर, बड़ोदा

ता० १ मार्च से ६ मार्च तक बड़ोदा में श्री दादा धर्माधिकारीजी के व्याख्यानों के द्वितीय विचार-शिविर का आयोजन रखा गया है। शिविर में बिना किसी भेद के सभी जिज्ञासु भाई-बहनों को प्रवेश मिलेगा। छह दिन का भोजन-खर्च सिर्फ ४) और शिविर-शुल्क १) लिया जायेगा। नीचे के पते से तुरंत आवेदन-पत्र मँगा लें या पूरा नाम-पता, उम्र, शिक्षण, व्यवसाय, शिविर में क्या कार्य कर सकेंगे, आदि जानकारी के साथ ५) भेज कर प्रवेश-पत्र प्राप्त कर लें।
भूमिपुत्र–कार्यालय, घडियाली पोल, बड़ोदा

श्री विनोबाजी का तंजाऊर जिले का पता : C/o श्री टी. के. श्रीनिवासन् लोकसेवक, १८१६, वेस्ट रोड, तंजाऊर, P.O. Tanjore (S. I.)

लोकसेवकों को सूचनाएँ

इस संबंध में कुछ सूचनाएँ पृष्ठ ४ पर भी छपी हैं।

हर एक लोकसेवक को महीने में दो बार अपने काम की रिपोर्ट भेजना है। एक बार ता० १ से १५ तक की और दूसरी बार ता० १६ से महीने की समाप्ति तक की। मैसूर, आन्ध्र, तमिलनाड़ और केरल, दक्षिण के इन चार प्रान्तों के लोक-सेवक अपनी रिपोर्ट वल्लभस्वामी, सर्व-सेवा-संघ, गांधीनगर, तिरुपुर (द० भा०), इस पते पर और उसकी नकल अपनी-अपनी भाषा की प्रकाशन-समिति को भेजें।

बाकी सारे प्रान्त के लोकसेवक अपनी रिपोर्ट सर्व-सेवा-संघ, खादीग्राम, जिला मुंगेर, (बिहार), इस पते पर भेजें और उसकी नकल अपनी भाषा की प्रकाशन-समिति को भेजें।

भिन्न-भिन्न प्रदेश के लोकसेवकों को जिस प्रकाशन-समिति के पास अपनी रिपोर्ट भेजनी है, उसकी जानकारी नीचे दी गयी है।

रिपोर्ट या उसका सार विनोबाजी को पहुँचाने की और प्रकाशन की व्यवस्था ऊपर के स्थानों से होगी। १ जनवरी से शुरू किये गये काम की रिपोर्ट भेजी जाय।

प्रान्तीय प्रकाशन-समितियों की सूची

क्रम	प्रदेश	पता
१	असम	सर्वोदय-प्रकाशन-समिति, द्वारा अमलप्रभा देवी, पान बाजार, गौहाटी
२	आन्ध्र	सर्वोदय-साहित्य-प्रचार-समिति, गांधी-भवन, हैदराबाद (दक्षिण)
३	उत्कल	उत्कल खादी-मंडल, थोरियासाही, कटक–१
४	उत्तर प्रदेश	अ. भा. सर्व-सेवा-संघ, प्रकाशन, राजघाट, काशी (बनारस)
५	केरल	सर्वोदय-प्रसिद्धीकरण-समिति, कोझीकोड–१
६	गुजरात-सौराष्ट्र	यज्ञ-प्रकाशन-समिति, घड़ियाली पोल, बड़ौदा
७	तमिलनाड	सर्व-सेवा-संघ, गांधीनगर, तिरुपुर (द. भा.)
८	देहली	अ. भा. सर्व-सेवा-संघ, प्रकाशन, राजघाट, काशी (बनारस)
९	नाग-विदर्भ	ग्राम-सेवा-मंडल, नालवाडी, वर्धा (बंबई राज्य)
१०	पंजाब–हिमाचल	सर्वोदय-प्रकाशन-समिति, द्वारा सर्वोदय-पुस्तक-भंडार, निकलसन रोड, अंबाला छावनी
११	बंगाल	सर्वोदय-प्रकाशन-समिति, सी–५२, कॉलेज स्ट्रीट मार्केट, कलकत्ता–१२
१२	बिहार	बिहार सर्वोदय-मंडल, नेशनल हॉल, कदम कुआँ, पटना–३
१३	मध्यप्रदेश	फिलहाल सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, काशी
१४	महाराष्ट्र, मराठवाड़ा	महाराष्ट्र सेवा-संघ, ३६१ सदाशिव पेठ, पूना
१५	मैसूर–कर्नाटक	सर्वोदय-प्रकाशन-समिति, द्वारा खादी-वस्त्रालय, फोर्ट, बेंगलूर–२
१६	राजस्थान	समग्र-सेवा-संघ, किशोर निवास, त्रिपोलिया, जयपुर

—वल्लभस्वामी

विषय-सूची

१. राजनीति, लोकनीति और रचनात्मक कार्य !	विनोबा	१
२. क्रांतियात्रा के पथिक	वसंत बोंबटकर	२
३. चिंतन के क्षणों में—	जयप्रकाश नारायण	३
४. भगवान् का हाथ ! : २.	हरिभाऊ उपाध्याय	३
५. भूदान-आंदोलन की कार्य-रचना और कुछ परिवर्तन	वल्लभस्वामी	४
६. विनोबा के साथ श्रीमती चेस्टर बौल्स : १.	दामोदरदास मूँदड़ा	५
७. आज ही और हमेशा भी !	विनोबा	६
८. कॉमन प्लॅटफॉर्म!	,,	६
९. पंचामृत	—	७
१०. तमिलनाड़ की क्रांतियात्रा से–	दामोदरदास मूँदड़ा	१०
११. ग्रामदान-समाचार, संवाद-सूचनाएँ आदि	—	१२

सिद्धराज ढड्ढा, सहमंत्री, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित। पता : पोस्ट बॉक्स नं० ४१, राजघाट, काशी

www.vinoba.in